राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान संपादक – पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]

*

चित्रकूटाधिपति-कुम्भकर्ण-नृपतिप्रणीत

नृत्यरत्नकोश

(प्रथम भाग)

************ प्रकाशक ************

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

जयपुर (राजस्थान)

२) रु० ७५ न० पै०

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(राजस्थान ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट)

द्वारा प्रकाशित

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान संपादक

पुरातत्त्वाचार्य, मुनि जिनविजय

[सम्मान्य संचालक – राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर]

*

प्रकाशनकर्ता

संचालक – राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

जयपुर (राजस्थान)

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

*

राजस्थान सरकार द्वारा प्रस्थापित

राजस्थानमें प्राचीन साहित्यके संग्रह, संरक्षण, संशोधन और प्रकाशन कार्यका महत् प्रतिष्ठान

*

राजस्थानका सुविशाल प्रदेश, अनेकानेक शताब्दियोंसे भारतका एक हृदयस्वरूप स्थान बना हुआ होनेसे विभिन्न जनपदीय संस्कृतियोंका यह एक केन्द्रीय एवं समन्वय भूमि सा संस्थान बना हुआ है। प्राचीनतम आदिकालीन वनवासी भिल्लादि जातियोंके साथ, इतिहासयुगीन आर्य जातिके भिन्न भिन्न जनसमूहोंका यह प्रिय प्रदेश बना हुआ है। वैदिक, जैन, बौद्ध, शैव, भागवत एवं शाक्त आदि नाना प्रकारके धार्मिक तथा दार्शनिक संप्रदायोंके अनुयायी जनोंका यहां स्वस्थ और सहिष्णुतापूर्ण सन्निवेश हुआ है। कालक्रमानुसार मौर्य, शक, क्षत्रप, गुप्त, हूण, प्रतिहार, गुहिलोत, परमार, चालुक्य, चाहमान, राष्ट्रकूट आदि भिन्न भिन्न राजवंशोंकी राज्यसत्ताएं इस प्रदेशमें स्थापित होती गईं और उनके शासनकालमें यहांकी जनसंस्कृति और राष्ट्रसम्पत्ति यथेष्ट रूपमें विकसित और समुन्नत बनती रही। लोगोंकी सुख-समृद्धिके साथ विद्यावानोंकी विद्योपासना भी वैसी ही प्रगतिशील बनी रही, जिसके परिणाममें, समयानुसार, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देश्य भाषाओंमें असंख्य ग्रन्थोंकी रचनारूप साहित्यिक समृद्धि भी इस प्रदेशमें विपुल प्रमाणमें निर्मित होती गई।

इस प्रदेशमें रहनेवाली जनताका सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अनुराग अद्भुत रहा है, और इसके कारण राजस्थानके गांव-गांवमें आज भी नाना प्रकारके पुरातन देवस्थानों और धर्मस्थानोंका गौरवोत्पादक अस्तित्व हमें दृष्टिगोचर हो रहा है। राजस्थानीय जनताके इस प्रकारके उत्तम सांस्कृतिक–आध्यात्मिक अनुरागके कारण विद्योपासक वर्गद्वारा स्थान-स्थान पर विद्यामठों, उपाश्रयों, आश्रमों और देवमन्दिरोंमें वाङ्मयात्मक साहित्यके संग्रहरूप ज्ञानभण्डार–सरस्वतीभण्डार भी यथेष्ट परिमाणमें स्थापित थे। ऐतिहासिक उल्लेखोंके आधारसे ज्ञात होता है कि राजस्थानके अनेकानेक प्राचीन नगर – जैसे आघाट, भिन्नमाल, जाबालिपुर, सत्यपुर, सीरोही, बाहडमेर, नागौर, मेडता, जैसलमेर, सोजत, पाली फलोदी, जोधपुर, बीकानेर, सुजानगढ, भटिंडा, रणथंभोर, मांडल, चितौड, अजमेर, नराना, आमेर, सांगानेर, किसनगढ, चूरू, फतेहपुर, सीकर आदि सेंकडों स्थानोंमें, अच्छे अच्छे ग्रन्थभण्डार विद्यमान थे। इन भण्डारोंमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देश्य भाषाओंमें रचे गये हजारों ग्रन्थोंकी हस्तलिखित, मूल्यवान् पोथियां संगृहीत थीं। इनमें से अब केवल जैसलमेर जैसे कुछ-एक स्थानोंके ग्रन्थभण्डार ही किसी प्रकार सुरक्षित रह पाये हैं। मुसलमानों और इंग्रेजों जैसे विदेशीय राज्यलोलुपोंके संहारात्मक आक्रमणोंके कारण, हमारी वह प्राचीन साहित्य-सम्पत्ति बहुत कुछ नष्ट हो गई। जो कुछ बची-खुची थी वह भी पिछले १००–१५० वर्षोंके अन्दर, राजस्थानसे बहार – काशी, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, बंगलोर, पूना, बडौदा, अहमदाबाद आदि स्थानोंमें स्थापित नूतन साहित्यिक संस्थाओंके संग्रहोंमें बडी तादादमें जाती रही है। और तदुपरान्त युरोप एवं अमेरिकाके भिन्न भिन्न ग्रन्थालयोंमें भी हजारों ग्रन्थ राजस्थानसे पहुंचते रहे हैं। इस प्रकार यद्यपि राजस्थानका प्राचीन साहित्य भण्डार एक प्रकारसे अब खाली हो गया है; तथापि, खोज करने पर, अब भी हजारों ग्रन्थ यत्रतत्र उपलब्ध हो रहे हैं जो राजस्थानके लिये नितान्त अमूल्य निधि स्वरूप हो कर अत्यन्त ही सुरक्षणीय एवं संग्रहणीय हैं।

*

हर्ष और सन्तोषका विषय है कि राजस्थान सरकारने हमारी विनम्र प्रेरणासे प्रेरित हो कर, इस **राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर** (राजस्थान ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट) की स्थापना की है और इसके द्वारा राजस्थानके अवशिष्ट प्राचीन ज्ञानभण्डारकी सुरक्षा करनेका समुचित कार्य प्रारंभ किया है । इस कार्यालय द्वारा राजस्थानके गांव-गांवमें ज्ञात होने वाले ग्रंथोंकी खोज की जा रही है और जहां कहींसे एवं जिस किसीके पास उपयोगी ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनको खरीद कर सुरक्षित रखनेका प्रबन्ध किया जा रहा है । सन् १९५० में इस प्रतिष्ठानकी प्रायोगिक स्थापना की गई थी, और अब पिछले वर्ष, १९५६ के प्रारंभसे, सरकारने इसको स्थायी रूप दे दिया है और इसका कार्यक्षेत्र भी कुछ विस्तृत बनाया गया है । अब तकके प्रायोगिक कार्यके परिणाममें भी इस प्रतिष्ठानमें प्रायः १०००० जितने पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थोंका एक अच्छा मूल्यवान् संग्रह संचित हो चुका है । आशा है कि भविष्यमें यह कार्य और भी अधिक वेग धारण करता जायगा और दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक उन्नति करता जायगा ।

*

जिस प्रकार उक्त रूपसे इस प्रतिष्ठानके प्रस्थापित करनेका एक उद्देश्य राजस्थानकी प्राचीन साहित्यिक संपत्तिका संरक्षण करनेका है वैसा ही अन्य उद्देश्य इस साहित्यनिधिके बहुमूल्य रत्नस्वरूप ग्रन्थोंको प्रकाशमें लानेका भी है । राजस्थानमें उक्त रूपमें जो प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें सेंकडों ग्रन्थ तो ऐसे हैं जो अभी तक प्रकाशमें नहीं आये हैं; और सेंकडों ही ऐसे हैं जिनके नाम तक भी अभी तक विद्वानोंको ज्ञात नहीं है । यह सब कोई जानते हैं कि इन ग्रन्थोंमें हमारे राष्ट्रके प्राचीन सांस्कृतिक इतिहासकी विपुल साधन-सामग्री छिपी पडी है । हमारे पूर्वज हजारों वर्षों तक जो ज्ञानार्जन करते रहे उसका निष्कर्ष और नवनीत नीकाल नीकाल कर, वे अपनी भावी सन्ततिके उपयोगके लिये इन ग्रन्थात्मक कृतियोंमें संचित करते गये । व्याकरण, कोष, काव्य, नाटक, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक, कामविज्ञान, अर्थशास्त्र, शिल्पकला आदि लौकिक विद्याओंके ज्ञानके साथ श्रुति, स्मृति, पुराण, धर्मसूत्र, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, जैन, बौद्ध, शाक्त, तंत्र, मंत्र आदि धार्मिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विद्याओंके रहस्य भी इन ग्रन्थोंमें नाना स्वरूपोंमें ग्रथित किये हुए हैं । इसी प्रकार, युग युगमें होने वाले अनेक शूर-वीर, दानी-ज्ञानी, सन्त-महन्त, त्यागी-वैरागी, भक्त-विरक्त आदि गुण-विशिष्ट नर-नारी जनोंके जीवन और कार्योंके विविध वर्णन – चित्रण भी इन्हीं ग्रन्थोंमें अन्तर्निहित हैं । अर्थात् हमारे राष्ट्रकी सर्व प्रकारकी गौरव-गरिमाविषयक कथा-गाथाकी रक्षा करने वाला हमारा यही एकमात्र प्राचीन साहित्यसंग्रह है । इसीके प्रकाशसे संसारमें भारतका गुरुपद ज्ञात हुआ और स्थापित हुआ है । यद्यपि आज तक इनमेंसे हजारों ही प्राचीन ग्रन्थ, प्रकाशमें आ चुके हैं, फिर भी हजारों ही ऐसे ग्रन्थ और बाकी हैं जो अन्धकारके तलघरमें दटे पडे हैं । इनका उद्धार करना और इन्हें प्रकाशमें रखना यह अब इस नूतन जीवन प्राप्त नव्य भारतके प्रत्येक व्यक्ति और संस्थाका परम कर्तव्य है । इसी कर्तव्यको लक्ष्य कर, इस संस्था द्वारा **'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला'** के प्रकाशनका आयोजन भी किया गया है । इसके द्वारा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देश्य भाषाओंमें निबद्ध विविध विषयोंके प्राचीन ग्रन्थ, तज्ज्ञ एवं सुयोग्य विद्वानोंसे संशोधित और संपादित हो कर प्रकाशित किये जा रहे हैं । अब तक कोई छोटे बडे २० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और प्रायः ३० से अधिक ग्रन्थ प्रेसोंमें छप रहे हैं । राजस्थान सरकार वर्तमानमें, इस कार्यके लिये प्रतिवर्ष २०००० रूपये खर्च कर रही है–पर हमारी कामना है कि भविष्यमें यह रकम बढाई जाय और तदनुसार अधिक संख्यामें इन प्राचीन ग्रन्थोंका समुद्धार और प्रकाशन कार्य किया जाय ।

साहित्यका प्रकाश ही प्रजाके अज्ञानान्धकारको नष्ट कर, उसे दिव्यताका दर्शन कराता है ।

माघ शुक्ला १४, वि० सं० २०१३.
(जीवनके ७० वें वर्षका प्रथम दिन)

मुनि जिनविजय

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालाके कुछ ग्रन्थ

प्रकाशित ग्रन्थ

संस्कृत

१ **प्रमाण मञ्जरी** – तार्किक चूडामणि सर्वदेवाचार्य प्रणीत। तीन व्याख्याओंसे समलंकृत।
२ **यन्त्रराजरचना** – जयपुर नरेश महाराज सवाई जयसिंह समारचित।
३ **महर्षिकुलवैभवम्** – विद्यावाचस्पति स्व० श्रीमधुसूदन ओझाविरचित।
४ **तर्कसंग्रह-फक्किका** – पं० क्षमाकल्याणकृत।
५ **कारकसंबन्धोद्योत** – पं० रभसनन्दिकृत।
६ **वृत्तिदीपिका** – पं० मौलिकृष्णभट्ट कृत।
७ **शब्दरत्नप्रदीप** – संक्षिप्त संस्कृत शब्दकोष।
८ **कृष्णगीति** – कवि सोमनाथकृत गीतिकाव्य।
९ **शृंगारहारावलि** – हर्षकवि विरचित।
१० **चक्रपाणिविजयमहाकाव्य** – पं० लक्ष्मीधरभट्ट रचित।
११ **राजविनोद काव्य** – कवि उदयराज रचित।
१२ **नृत्तसंग्रह** – नाट्यविषयक पठनीय ग्रन्थ।
१३ **नृत्यरत्नकोश** – महाराणा कुम्भकर्ण प्रणीत।
१४ **उक्तिरत्नाकर** – पण्डित साधुसुन्दरगणी कृत।
१५ **कविदर्पण** – प्राकृत छन्दोरचनात्मक ग्रन्थ।
१६ **वृत्तजातिसमुच्चय** – विरहाङ्क कवि कृत।
१७ **ईश्वरविलास महाकाव्य** – पं० कृष्णभट्टकविकृत।

राजस्थानी भाषा ग्रन्थ

१ **कान्हड दे प्रबन्ध** – कवि पद्मनाभ रचित।
२ **क्यामखां रासा** – मुस्लिम कवि जानकृत।
३ **लावारासा** – चारणकविया गोपालदानकृत।

प्रेसोंमें छप रहे ग्रन्थ

(क) संस्कृत ग्रन्थ

१ **त्रिपुराभारती** – लघुपंडित
२ **शकुनप्रदीप** – लावण्य शर्मा
३ **करुणामृतप्रपा** – ठक्कुर सोमेश्वर
४ **बालशिक्षाव्याकरण** – ठक्कुर संग्रामसिंह
५ **पदार्थरत्नमञ्जूषा** – पं० कृष्णमिश्र
६ **काव्यप्रकाश, संकेत** – भट्ट सोमेश्वर
७ **वसन्तविलास** – फागु काव्य
८ **नृत्यरत्नकोश** – राजाधिराज कुंभकर्ण देव
९ **नन्दोपाख्यान** – संस्कृत और राजस्थानी
१० **रत्नकोश** – विविधवस्तुसंग्रह विचारात्मक
११ **चान्द्रव्याकरणम्** – आचार्य चन्द्रगोमि
१२ **स्वयंभू छंद** – स्वयंभू कवि
१३ **प्राकृतानन्द** – कवि रघुनाथ
१४ **मुग्धाववोध आदि औक्तिक संग्रह**
१५ **कविकौस्तुभ** – पं० रघुनाथ मनोहर
१६ **दुर्गापुष्पांजलि** – पं० दुर्गाप्रसादजी
१७ **दशकण्ठवधम्** – ,,
१८ **कर्णकुतूहल** नाटक
१९ **कृष्णलीलामृत** काव्य

राज्यस्थानी भाषाग्रन्थ

१ **बांकीदासरी वातां** – चारणकवि बांकीदास
२ **मुंहता नैणसीरी ख्यात** – जोधपुरके मुंहता नेणसी लिखित
३ **गोरा बादल-पदमिणी चउपई** – जैन यति कवि हेमरतन कृत
४ **राठोड वंशरी विगत** – राठोडोंके इतिहासकी कथाएं।
५ **राजस्थानी साहित्य संग्रह** – राजस्थानी भाषा में लिखित विविध वृत्तान्त।
६ **दाढाला एकल गिडरी वात** – राजस्थानी भाषाकी एक सरस प्रहसनात्मक रचना।
७ **सुजान संवत** – कवि उदयराम रचित
८ **चन्द्रवंशावलि** – कवि मतिराम कृत
९ **राजस्थानी दूहा संग्रह**

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त अनेकानेक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी - हिन्दी भाषामें रचे गये ग्रन्थोंका संशोधन - संपादन आदि कार्य किया जा रहा है।

*

इसी तरह राष्ट्र - भाषा हिन्दीमें भी उच्च कोटिके ग्रन्थोंके प्रकाशनका आयोजन चल रहा है।

→★←

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान संपादक – पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]

*

चित्रकूटाधिपति-कुम्भकर्ण-नृपतिप्रणीत

नृत्यरत्नकोश

(प्रथम भाग)

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

जयपुर (राजस्थान)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्यद्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातन कालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

*

प्रधान संपादक

पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि

[ऑनररि मेंबर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य

भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य सभा, अहमदाबाद;
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधप्रतिष्ठान होसियारपुर; निवृत्त सम्मान्य नियामक -
(ऑनररि डॉयरेक्टर) – भारतीय विद्याभवन, बंबई.

ग्रन्थाङ्क २४

मेदपाटदेशीय चित्रकूटाधिपति कुम्भकर्ण नृपति प्रणीत

नृत्यरत्नकोश

[प्रथम भाग]

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

जयपुर (राजस्थान)

*

माघ विक्रमाब्द २०१३ | फरवरी ख्रिस्ताब्द १९५७

राजस्थानान्तर्गत-मेदपाटदेशीय-चित्रकूटदुर्गाधिपति
नृपति कुम्भकर्णदेव प्रणीत

नृत्यरत्नकोश

[विविधपाठभेदादि समलंकृत-प्रथमवार प्रकाशित]

(प्रथम भाग – पूर्वार्ध)

संपादक

प्रा. रसिकलाल छोटालाल परीख

(अध्यक्ष – गुजरातविद्यासभाऽन्तर्गत-भो. जे. उच्चाध्ययन-
संशोधन विद्यामन्दिर, अहमदाबाद)

तथा

डॉ. प्रियबाला शाहा, एम्. ए. पीएच्. डी. (बंबई)
डी. लिट्. (पारीस)

(प्रा. प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति विभाग,
रामानन्द महाविद्यालय, अहमदाबाद)

प्रकाशनकर्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर
जयपुर (राजस्थान)

*

विक्रमाब्द २०१३] [खिस्ताब्द १९५७

मुद्रक – लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी, निर्णयसागर प्रेस,
२६ – २८ कोलभाट स्ट्रीट, बंबई २.

नृत्यरत्नकोश – अनुक्रम

प्रधानसंपादकीय किंचित् प्रास्ताविक

विशाल राजस्थानान्तर्गत मेदपाट (मेवाड) देशकी महत्ता भारतविश्रुत है। इस मेवाडके मस्तकस्थानीय चित्रकूट (चित्तौड) का – जिसको कवियोंने पृथ्वीके मुकुटकी उपमा दी है – ऐतिहासिक गौरव, भारतके भूत कालमें अपना अनन्य स्थान रखता है। अतः आधुनिक भारतका प्रत्येक राष्ट्रभक्त इस पुण्यभूमि चित्तौडकी यात्रा करना अपना परम कर्तव्य समझता है। इसी चित्तौडके दुर्गरूप मुकुटमें कलगीके समान, वह जगत्प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ विराजमान है, जिसके चित्र भारतके प्राचीन स्थापत्य विषयक प्रत्येक ग्रन्थमें और इतिहास विषयक प्रत्येक पुस्तकमें दृष्टिगोचर होते रहते हैं। चित्तौडके यात्रीको, बहुत दूरसे, सबसे प्रथम दर्शन, इसी कीर्तनरूप कीर्तिस्तंभके होते हैं। चित्रकूटके सबसे बडे वीर और विद्वान् नृपति महाराणा कुंभकर्णने (जिनका अधिक लोकप्रिय नाम संक्षेपमें कुंभा प्रसिद्ध है) यह कीर्तिस्तंभ बनवाया था। स्थापत्य कलाकी दृष्टिसे महाराणा कुंभाकी यह कृति अपने ढंगकी अनुपम है। सारे भारतवर्षमें इस प्रकारका अन्य कोई कीर्तिस्तंभ विद्यमान नहीं है।

महाराणा कुंभा, जैसे वीरशिरोमणि नृपति थे वैसे ही वे कला और विद्याके विषयमें भी अद्भुत प्रतिभासंपन्न और निर्माण-कार्य-कुशल व्यक्ति थे। उनके अद्भुतकला-प्रेमके द्योतक, चित्तौडके कीर्तिस्तंभके अतिरिक्त, आरावली पर्वतमालाके सबसे सुन्दरतम शिखर पर सुशोभित कुंभलमेर नामक दुर्ग और उसके अनेकानेक स्थान विद्यमान हैं। उन्हींके कलाप्रेमसे प्रोत्साहित हो कर, आबूप्रदेश निवासी धन्ना नामक पोरवाड जातिके जैन वणिक्ने आरावलीकी उपत्यकामें राणकपुरका वह अद्भुत जैन मन्दिर बनवाया जो अपनी विशालता एवं कलामयताकी दृष्टिसे, न केवल भारतमें ही अपितु सारे एशिया खण्डमें, एक दर्शनीय स्थान बना हुआ है। महाराणा कुंभाके संरक्षणमें उस मन्दिरका निर्माण हुआ अतः उस स्थानका नाम ही राणकपुरके रूपमें सुप्रसिद्ध हुआ।

इन्हीं महाराणा कुम्भकर्णका बनाया हुआ साहित्यिक कीर्तिस्तंभस्वरूप **'संगीतराज'** नामक संस्कृत भाषाका महान् ग्रन्थ उपलब्ध होता है जिसका एक भाग, प्रस्तुत रूपमें, विद्वानोंके करकमलमें उपस्थित है। यह **संगीतराज** ग्रन्थ बहुत बडा है। सोलह हजार श्लोकों जितना इसका परिमाण है। १६–१६ अक्षरोंकी एक पंक्तिके हिसाबसे ३२००० पंक्तियोंमें यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। ग्रन्थके नामसे ही ज्ञात होता है कि भारतीय संगीत कलाके विषयमें इस ग्रन्थमें सर्वाङ्ग परिपूर्ण विवेचन किया गया है। हमारे देशकी प्राचीन परंपरानुसार संगीतके अन्तर्गत, उससे संबद्ध नृत्य और वाद्य कलाका भी समावेश हो जाता है। अतः इस ग्रन्थमें गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों विषयका बहुत ही विस्तृत और वैविध्यपूर्ण विवेचन किया गया है।

राजस्थानके एक महान् नृपतिकी अनुपम साहित्यिक कृति होनेके कारण, इस ग्रन्थराजके प्रकाशनका महत् कार्य 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' द्वारा करनेका हमने आयोजन किया है । इस ग्रन्थका प्रारंभिक अंशात्मक कुछ भाग **'पाठ्य रत्नकोश'**के नामसे बीकानेरके सुप्रसिद्ध अनूप पुस्तकालयके तत्त्वावधानमें प्रकट किया गया था— पर साधनाभावसे आगेका काम स्थगित कर दिया गया ।

*

प्रस्तुत **'नृत्यरत्नकोश'**की एक प्राचीन पोथी बडोदाके 'गायकवाड प्राच्य विद्या-मन्दिर'के ग्रन्थ संग्रहमें, प्राध्यापक श्री रसिकलालजी परीखके देखनेमें आई जिसके बारेमें उनने मुझसे जिक्र किया। सुश्री डॉ० प्रियबाला शाह, जो उन दिनों प्राध्यापक परीखजीके समीप नृत्यकला विषयक साहित्यका विशेष अवलोकन एवं अनुसन्धान कार्य कर रही थीं, बडोदा जा कर वह पोथी ले आईं और मुझे दिखाई । पोथीका दर्शनमात्र करते ही मुझे ग्रन्थकी विशिष्टता प्रतीत हो गई और तुरन्त मैंने श्री परीखजी तथा सुश्री प्रियबालाको इसका संपादन कार्य करनेकी प्रेरणा दी और राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला द्वारा इसको प्रकाशित करनेकी योजना की । खोज करने पर ज्ञात हुआ कि इस ग्रन्थकी दो अन्य प्राचीन प्रतियां बीकानेरके अनूप पुस्तकालयमें सुरक्षित हैं। पर वह पुस्तकालय, बीकानेर महाराजके निजी अधिकारमें होनेसे उनकी प्राप्तिकी समस्या हमारे सम्मुख उपस्थित हुई । प्रसंगवश स्वर्गवासी भारतीय लोकसभा-अध्यक्ष माननीय श्री मावलंकरजीसे जिक्र किया, तो उनने बीकानेर महाराजको अपना निजी पत्र भेज कर, हमारे लिये उक्त मूल्यवान् पोथियोंकी प्राप्ति सुलभ कर दी ।

इन पोथियोंके आधारसे, प्रेस कॉपी तैयार होने पर अहमदाबादके ही एक प्रेसमें मुद्रणकार्य प्रारंभ कराया गया । कुछ समय बाद सुश्री डॉ. प्रियबाला, अपने अध्ययनमें विशेष प्रगति करनेकी दृष्टिसे, फ्रान्समें पारिस-युनिवर्सिटीमें प्रविष्ट होने चली गईं। प्रा० श्री परीखजी भी, गुजरात विद्या सभा अन्तर्गत उच्च अध्ययन एवं संशोधन कार्यकारी भो० जे० विद्या मन्दिरकी नाना प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें अत्यधिक व्यस्त रहनेके कारण, इस ग्रन्थका मुद्रणकार्य प्रायः ४ वर्ष तक स्थगित सा ही रहा । सुश्री डॉ० प्रियबालाके विदेशसे वापस आने पर, मुद्रणका कार्य फिर हाथमें लिया गया। पर अहमदाबादके जिस प्रेसमें प्रथम यह कार्य प्रारंभ किया गया था उसका काम संतोष जनक न होनेसे एवं प्रेसकी स्थिति भी अन्याधीन हो जानेसे, बंबईके सुप्रसिद्ध निर्णय सागर प्रेसमें इसके मुद्रणका प्रबन्ध किया गया ।

ग्रन्थका वर्ण्य विषय एक प्रकारसे सर्वथा पारिभाषात्मक हो कर गीत-नृत्यादि कलाविशेषज्ञके सु-अभ्यस्त तथा स्वानुभवप्राप्त ज्ञानसे विशिष्ट संबन्ध रखता है । अतः इसका संपादन कार्य वही विद्वान् समुचित रूपसे कर सकता है जिसका साहित्यिक अध्ययन एवं प्रायोगिक अनुभव—दोनों ही यथेष्ट प्रमाणमें हों । प्रस्तुत ग्रन्थके संपादक—

द्वय इस विषयके उत्तम विशेषज्ञ हैं। श्री परीखजी गुजरातके ख्यातिप्राप्त नाट्यकार-एवं नाट्यकलाविदोंके अग्र दिग्दर्शक हैं। **संगीतराज** महाग्रन्थका प्रस्तुत 'नृत्य रत्न-कोश' प्रकरण ४ उल्लासोंमें विभक्त है। इनमें से प्रथम दो उल्लास, प्रथम भागके रूपमें, प्रकट किये जा रहे हैं। अवशिष्ट २ उल्लास, द्वितीय भागमें आवेंगे, जो प्रेसमें छप रहा है। संपादकोंकी लिखी गई विस्तृत प्रस्तावना आदि विवेचना, उसी द्वितीय भागमें दी जायगी; तथा ग्रन्थकी प्राचीन प्रतियां एवं उनके बारेमें जानने योग्य अन्यान्य सब बातोंका विवरण भी उसीमें दिया जायगा।

इस **संगीतराज** ग्रन्थके भिन्न भिन्न खण्डोंकी जो प्राचीन पोथियां प्राप्त हो रही हैं, उनमें, परस्पर, ग्रन्थकर्ताविषयक प्रशस्त्यात्मक विशिष्ट उल्लेखोंमें विचित्र पाठ भेद मिलता है। एक प्रतिमें महाराणा कुंभकर्णकी जगह, किसी महाराज कालसेन और उसकी कीर्तिकथासूचक वर्ण्य प्रशस्ति दी हुई मिलती है। बीकानेरसे प्रकाशित **'पाठ्य रत्नकोश'**की प्रस्तावनामें, उसके संपादक विद्वान् डॉ० कुन्हनराजाने इस विषयको ले कर बडे तर्क-वितर्क किये हैं और ग्रन्थकर्ताके बारेमें, वे एक प्रकारसे, बडे भ्रममें पड गये हैं। हमको इस भ्रमके निराकरणके लिये उन पोथियों ही से प्रत्यक्ष सामग्री प्राप्त है अतः इसका वर्णन भी उसी अगले भागमें दिया जायगा।

बंबई – भारतीय विद्या भवन
दिनांक – २७, जनवरी. १९५७

मु नि जि न वि ज य

मेदपाटदेशाधीश्वर-श्रीकुम्भकर्णनृपति-विरचितः

नृत्यरत्नकोशः ।

प्रथमोल्लासे प्रथमं परीक्षणम् ।

[मङ्गलम् ।]

†उच्चैर्नाथ सृजाङ्गहाररचनां सद्धस्तकोल्लासिनीं
स्वान्येवं करणानि योजय पदे मा संभ्रमं प्रापय ।
कौचे चा[1]रचयाशयानुगतिकाश्चारीः[2] शुभे मण्डले
संप्रोक्तोऽद्रि[3]जयेति सौरतरसे नृत्यन् शिवः पातु वः ॥ १

एतत् किं जलमाङ्गिकं ननु मृषा किं वाचिकं तन्यते
नो मिथ्या सदृशं तदेवमधुनाऽऽहार्यं विभो युज्यते ।
मुग्धे सात्त्विकमेतदत्र विदितं किं नेति ते तत्त्वतो
गङ्गां मूर्द्धनि गोपतो विजयते शम्भोर्गिरां विभ्रमः ॥ २

शिरोदेशे[4] [चन्द्रं ?] रुचिरकरपद्मेऽक्षवलयं
वरे वक्षःपीठे पृथुभुजगहारोज्ज्वलमणिम्[5] ।
शिवां पार्श्वे कट्यां फणिमणिगणारब्धरशनां
पदाब्जे बिभ्राणः कटकमहिजं वोऽवतु शिवः ॥ ३

*

[नाट्यशास्त्रस्य निष्पत्तिः ।]

पाठ्या(नाट्या ?)देरुपयोगार्थमथ नृत्यं प्रपञ्च्यते ।
तदभावे यतः सर्वं निर्जीवमिव भासते ॥ ४
न नृत्येन समं किञ्चिद् दृश्यं श्रव्यं च विद्यते ।
चतुर्वर्गफलावाप्तिर्नृत्यादेव यतः स्मृता[6] ॥ ५
कैश्चिद्[7] ब्रह्मादिभिर्धर्मः कैश्चिदर्थोऽप्युपार्जितः ।
कैश्चित् कामफलं प्राप्तं कैश्चिन्मोक्षोऽपि नृत्यतः ॥ ६
प्रागल्भ्यमप्रगल्भानां सौभाग्यं च तदर्थिनाम् ।
उत्साहो हीनमनसां कीर्त्तिरौदार्यशालिनाम् ॥ ७

---

† A begins:-श्रीगणेशाय नमः; BC दे० ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥
1 ABC द्वार° । 2 ABC °री । 3 BC द्रियते । 4 ABC °देशेरुचि° । 5 ABC °मणि ।
6 BC °ताः । 7 BC °श्चि ब्रह्मा° ।

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं चञ्चलचेतसाम् ।
दुःखिनां धैर्यकरणमिन्द्रियाणां तु कार्मणम् ॥ ८
यूनां शृङ्गारसर्वस्वं मानो मानवतामिदम् ।
एतद् धन्यतमं लोके स्वर्गेऽप्येतत् प्रशस्यते ॥ ९
भूपानामभिषेचने पुरगृहप्रावेशिके कर्मणि
प्रेष्ठानामपि सङ्गमे सुतजनौ पर्वस्वभीष्टाप्तिषु ।
यात्रायां विजयोत्सवे सुरगमे वैवाहिके मङ्गले
मङ्गल्येषु च सर्वकर्मसु तथा यज्ञादिपूर्तेष्वपि ॥ १०

*

[नाट्यशास्त्रस्य पारम्पर्यम् ।]

मङ्गल्यं जनताप्रियं नरपतिप्रेष्ठं विशेषादिदं
शोभाढ्यं परमेतदेव जगतां नृत्यं प्रमोदास्पदम् ।
[1]इन्द्राभ्यर्थनया पुरेदमखिलं साङ्गं विधाताऽभ्यधात्
सोऽपीदं भरताय साङ्गमदिशत् तत्प्रार्थनाभ्यर्थितः ॥ ११
नाट्यादित्रितयं ततः स तु सुतैः साकं शतेनाप्सरो-
वृन्दैश्चापि शिवाग्रतोऽग्र्यमहिम प्रायुङ्क्त तत् प्रीतिविद् ।
एवं प्रीतिपरम्परापरवशोऽप्यस्मै तदादीदृशत्
शम्भुस्ताण्डवमुद्धताङ्गरचनं स्वोपक्रमं तण्डुना ॥ १२
लास्यं चास्य पुरः पुरा स्वभणितैरङ्गैर्द्विपञ्चैर्युतं
पार्वत्याः[2] समदीदृशत् स भगवान् सर्वज्ञचूडामणिः ।
नन्वेतद् विदितं परोन्नतिभृतोऽन्योत्कर्षसर्वंकषाः
प्रायेणैव परोन्नतिं धृतिभृतः के वा सहन्ते बुधाः ॥ १३
एवं ते भरतात्मजा गणवरात्तण्डोर्विदित्वाऽवदन्
[3]मर्त्येभ्यः किल ताण्डवं गिरिसुता बाणात्मजां तामुषाम् ।
लास्यं साङ्गमबीभणत् पुनरुषा गोपीगणं प्रीतित-
स्तेन प्राप्य ततः समग्रमुदितं सौराष्ट्रयोषाग्रतः ॥ १४
नानादेशसमुद्भवाश्च ललना[4]स्ताभिस्ततः शिक्षिता-
स्ताभ्योऽप्यत्र परम्परागतमिदं लोके प्रतिष्ठामगात् ।
पार्थायैतदुपादिशत् पुनरिदं गन्धर्वलोकाधिपः
श्रीमान् चित्ररथस्तदेतदखिलं मार्गाभिधं तत्त्वतः ॥ १५

1 ABC इन्द्रोभ्य° । 2 ABC °त्या समु° । 3 BC मर्तेभ्यः । 4 ABC °ना ताभि° ।

तेनेदं च विराटराजदुहिता संशिक्षिताऽत्रोत्तरा
तस्योच्छित्तिरभूदिहापि कियता कालेन तद् वै पुनः ।
आराध्याखिललोकशोकशमनं शम्भुं नृपः साकल-
स्तस्मात् साङ्गमवाप्य मर्त्यनिवहा[1]योपादिशद् विस्तरात् ॥ १६

कालेनाथ पुनर्विलीनमिव तद् दृष्ट्वा गणग्रामणीः
शम्भुः कुम्भनृपोपधिः प्रयतते वक्तुं विदामग्रणीः ।
[2]नाट्यादित्रिविधोपपत्तिकलनोपेतस्य तस्याधुना
नानार्थाभिनयप्रपञ्चरचनारम्यः क्रमो वर्ण्यते ॥ १७

*

[शास्त्रसंग्रहः ।]

निष्पत्तिर्नाट्यशास्त्रस्य तत्पारम्पर्यकीर्तनम् ।
निर्मितिर्नाट्यशालाया निवेशोऽथ सभापतेः ॥ १८

संनिवेशः सभायाश्च सर्वरङ्गार्थकीर्तनम् ।
कीर्तनं पूर्वरङ्गाङ्गप्रत्याहारादिलक्ष्मणः ॥ १९

[आदौ ?] सम्यङ्क् [3]नान्दीलक्ष्म ध्रुवा सोपोहना ततः ।
पात्रस्याथ प्रवेशश्च तथैवाङ्गनिरूपणम् ॥ २०

प्रत्यङ्गलक्ष्मोपाङ्गानां लक्ष्माभिनयलक्षणम् ।
हस्तस्य करणं हस्तक्षेत्रस्यापि च लक्षणम् ॥ २१

प्रचारो हस्तयोस्तद्वद्धस्तकर्माण्यनुक्रमात् ।
स्थानकानि तथा चार्यो द्विविधा मण्डलान्यपि ॥ २२

द्विविधानि तथा नृत्तकरणानि तथैव च ।
तानि चोत्प्लुतिपूर्वाणि कलासाश्च सरेचकाः ॥ २३

करणैरभिनिर्वृत्ता अङ्गहारा द्विधा ततः ।
वृत्तयश्च तथा न्यायाश्चातुर्विध्यमुपाश्रिताः ॥ २४

देशनृत्तविधिर्द्वेधा तथा परिवडिर्मता ।
नृत्तं पेरणिनस्तस्य लक्षणं पात्रलक्ष्म च ॥ २५

लास्याङ्गानां तथा लक्ष्मोपाध्यायाचार्ययोस्तथा ।
नटनर्तकयोस्तद्वल्लक्ष्म वैतालिकस्य च ॥ २६

लक्षणं रेचकस्याथ देशीनृत्तभिदां तथा ।
लक्षणं रासकादीनां लक्ष्म कोल्लाण्टिकस्य तु ॥ २७

---

1 ABC °योगादि° । 2 BC नट्यादि । 3 ABC °नादी° ।

नृत्तश्रमविधिस्तद्वत् संप्रदायस्य लक्षणम् ।
तद्गताश्च गुणा दोषाः क्रमेणैतत् प्रकाश्यते ॥ २८

*

[नाट्यशालानिर्माणम् ।]

निष्पत्तिर्नाट्यशास्त्रस्य तत्पारम्पर्यकीर्तनम् ।
उभयं पूर्वमेवोक्तमथ निर्माणमुच्यते ॥ २९
नाट्यशालागतं तत्र परीक्षेत भुवं पुरः ।
नाट्यवेश्मगतः कुर्याद् वास्तु लक्षणलक्षितम् ॥ ३०
दोषैरदूषिता भूमिः समा गौरी स्थिरा दृढा ।
अनूषरा भूमिदोषैः कीलकाद्यैरदूषिता ॥ ३१
लाङ्गलोल्लिखिता शस्ता तत्रर्क्षाणि समासतः ।
हस्तपुष्यानुराधान्त्यसौम्यचित्रोत्तरासु च ॥ ३२
द्विदैवत्ये दिने शस्ते विष्ट्याद्यैरपरिप्लुते ।
पुण्याहवाचनाद्येन नाट्यवेश्म समारभेत् ॥ ३३
समां कृत्वा भुवं तत्र सितं सूत्रं प्रयत्नतः ।
कर्पासाद्यन्यतरजं दृढं[1] नूनं प्रसारयेत् ॥ ३४
यदाकृष्टं बलात् पुम्भिर्न त्रुट्यति कदाचन ।
मध्य-त्रिभाग-तुर्यांशे त्रुटिते क्रमतो भवेत् ॥ ३५
विभु-राष्ट्र-प्रयोक्तॄणां फलं दोषावहं तथा ।
हस्तात् प्रसार्यमाणेऽस्मिन् भ्रष्टेऽप्यपचयो भवेत् ॥ ३६
ततः सूत्रं दृढं कार्यं नाट्यवेश्मविनिर्मितौ ।
तत् त्रिधा गदितं वेश्म निकृष्टं चतुरस्रकम् ॥ ३७
त्र्यस्रं चेति पुनर्मध्यं दीर्घं सममिति द्विधा ।
तत्राद्यं देवतागारमतिदीर्घमनुत्तमम् ॥ ३८
चतुरस्रं च यद् दीर्घं भूपतीनां तदीरितम् ।
ब्राह्मणादेर्गृहं प्रोक्तं चतुरस्रं समं बुधैः ॥ ३९
शूद्रादिहीनवर्णानां वेश्म त्र्यस्रमिहोदितम् ।
प्रेक्षागृहाणां निर्माणे प्रमाणं विश्वकर्मणा ॥ ४०
निर्दिष्टं[2] तत् प्रबोद्धव्यमणुश्चैव रजस्तथा ।
वालो लिक्षा च यूका च यवाश्चैवाङ्गुलं तथा ॥ ४१

1 BC दृढ । 2 ABC तार्द्दिष्टं ।

एकैकोत्तरवृद्ध्या च क्रमादष्टगुणं त्विदम् ।
हस्ताङ्गुलानां विंशत्या चतुरन्वितया मितः ॥ ४२

चतुर्हस्तो भवेद् दण्डो नाट्यवेश्ममितौ[1] सदा ।
तत्र स्यान्नाकिनां वेश्म [2]सप्तविंशतिदण्डकम् ॥ ४३

दैर्घ्ये विस्तरतस्तत् स्यात् तदर्धेन मितं पुनः ।
नृणां षोडशभिर्दण्डैर्मितमायामतो मतम् ॥ ४४

[3]त्रिरष्टभिस्तु विस्तारे तत्र सूत्रं प्रसारयेत् ।
नाट्यवेश्म न कर्तव्यमत ऊर्ध्वं कदाचन ॥ ४५

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां मध्यमं मानमिष्यते ।
यतस्तस्मिन् कृतं पाठ्यं गेयं च श्रव्यतां व्रजेत् ॥ ४६

संसाध्या भूमिरायामे पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः ।
दक्षिणोत्तरविस्तारो प्रतीच्या विभजेच्च ताम् ॥ ४७

दण्डैश्चतुर्भिर्द्वाभ्यां च द्वाभ्यामष्टाभिरेव च ।
चत्वारः स्युः क्रमाद् भागास्तेषु पश्चिमतो भवेत् ॥ ४८

नेपथ्यस्य गृहीतस्य पुरतो रङ्गशीर्षभूः ।
तदग्रतो रङ्गपीठं तत् पुरस्तात् सभास्पदम् ॥ ४९

भुवमित्थं विभज्याथ बलिं दद्यान्निशामुखे ।
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च नानारत्नैरलङ्कृतान् ॥ ५०

मृदङ्गपटवाद्यैश्च शङ्खदुन्दुभिगोमुखैः ।
सर्वातोद्यैः प्रणुदितैरुल्लूलध्वनिपेशलैः ॥ ५१

काषायवसनादीनां पाषण्ड्याश्रमिणां तथा ।
उत्सारणमनिष्टानां कृत्वा दिक्षु दशस्वपि ।
पुष्पाक्षतादिभिर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः शुचिमानसः ॥ ५२

यादृशं दिशि यस्यां स्याद् दैवतं निगमोदितम् ।
तादृशस्तत्र दातव्यो बलिर्मन्त्रपुरस्कृतः ॥ ५३

सितरक्तनीलकृष्णपीतधूम्रारुणामलम् ।
प्रागादिदिक्पतिभ्योऽन्नं कल्पयेत् प्रयतात्मवान् ॥ ५४

---

1 ABC °श्मनितौ । 2 ABC °सप्तविं° । 3 ABC तिरष्ट° ।

मुहूर्तेनानुकूलेन मूलेन श्रवणेन वा ।
रोहिण्यां [1]वोपोषितः सन्नुपाध्यायः[2] समाहितः ॥ ५५
स्तम्भानां स्थापनं कुर्याल्लग्ने सद्ग्रहवीक्षिते ।
सुशिल्पिघटिताः स्थाप्याः कुम्भिकाः पूर्वमेव ताः ॥ ५६
अन्तर्बहिर्मानसूत्रादर्धेन स्युः स्थिरं स्थिताः ।
अग्निकोणं पुरस्कृत्य स्तम्भाः[3] स्युर्ब्राह्मणादयः ॥ ५७
स्वर्णताम्ररूप्यलोहस्तन्मूलेऽनुक्रमात् क्षिपेत् ।
स्तम्भान् संपूजयेत् पश्चाद् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥ ५८
पीतै रक्तैस्तथा श्वेतैर्नीलैश्चैव यथाक्रमम् ।
पायसं गुडोदनं च कृतान्नं कृशरां तथा ॥ ५९
द्विजेभ्यो भोजनं दद्यात् स्तम्भानुक्रमतः सुधीः ।
तानुत्थाप्य शनैर्विद्वांश्चल[4]-कम्पविवर्जितान् ॥ ६०
स्थापयेत् कुम्भिकाशीर्षे शान्तिपाठपुरस्सरम् ।
यतस्तच्चलने राष्ट्रेऽनावृष्टिः कम्पने तथा ॥ ६१
परचक्रभयं तस्मात् तत्र यत्नो विधीयते ।
स्तम्भस्थापनमन्त्रोऽयं प्रणवादिनमोन्तकः ॥ ६२
यथाचलो गिरिर्मेरुर्हिमवांश्च महाचलः ।
जयावहो नरेन्द्रस्य तथात्वमच[लो भव][5] ॥ ६३
अनेन स्थापितान् स्तम्भान् पश्येद् दक्षिणतो नगान् ।
विप्रराजन्ययोर्मध्ये भुवा स्वाक्रान्तया सह ॥ ६४
सौम्ये सप्तापरांस्तद्वन्मध्यतो वैश्यशूद्रयोः ।
एवमष्टादशैते स्युः स्तम्भाः साष्टकरान्तराः ॥ ६५
भुवा स्वाक्रान्तया साकं दक्षिणेतरपार्श्वयोः ।
पूर्वपश्चिमयोस्तद्वद्वस्तषोडशकान्तरौ ॥ ६६
द्वौ द्वौ स्तम्भौ समारोप्यौ स्वार्धाक्रान्तभुवौ पृथक् ।
तयोर्मध्ये तथा स्तम्भौ साष्टहस्तान्तरौ पृथक् ॥ ६७
स्वार्धाक्रान्तभुवौ स्थाप्यौ द्वौ द्वौ पश्चिम[6]पूर्वयोः ।
एवं स्युर्वसवस्तम्भाश्चाथ[7] मध्यभुवि क्रमात् ॥ ६८

1 BC वापा° । 2 ABC °ध्याय स° । 3 ABC स्तंभास्युः । 4 ABC °अल° ।
5 ABC °च ॥ । 6 BC °मर्वे° । 7 ABC श्वथ° ।

स्थितस्तम्भानुसारेण सप्त सप्तापरान् सुधीः[1] ।
विन्यसेत् सूत्रमास्फाल्य चतसृष्वपि पङ्क्तिषु ॥ ६९
पञ्चहस्तमितायामान् विस्तारे हस्तमात्रकान् ।
चतुःपञ्चाशदुदितान् सह पूर्वैर्मनोरमान् ॥ ७०
यत्पङ्क्तिद्वितयं पार्श्वे पङ्क्तिर्या मध्यतः स्थिता ।
तासु कोष्ठाष्टकं कार्यं समन्तादष्टहस्तकम् ॥ ७१
मध्यपङ्क्तेस्तु ये पङ्क्ती पार्श्वतः समवस्थिते ।
तन्मध्ये तु स्थिते पङ्क्ती ये ते पूर्वैऽष्टकोष्ठकैः ॥ ७२
दैर्घ्येऽष्टहस्तकैर्व्यासे चतुर्हस्तविभूषितैः ।
विस्तारायामयोर्यद्वा तां भूमिं विभजेद् बुधः ॥ ७३
द्वात्रिंशता तथा हस्तैश्चतुःषष्ट्या यथाविधि[2] ।
द्वात्रिंशदेवं कोष्ठाः स्युश्चतुरस्रा मनोहराः ॥ ७४
आयामे परिणाहे च करैः षोडशभिर्मितम् ।
मध्यकोष्ठचतुष्कं तु रङ्गपीठं प्रकल्पयेत् ॥ ७५
पूर्ववद्रङ्गपीठस्य वह्निकोणादिकोणगान् ।
ब्राह्मणाद्युपधिस्तम्भान् स्थापयेत् शिल्पिसत्तमः ॥ ७६
करैः षोडशभिः सम्यगन्तरालविभूषितान् ।
चतुस्त्रिंशत् पुनः स्तम्भानन्यान् वेधविवर्जितान् ॥ ७७
साष्टहस्तान्तरान् विद्वान् यथाभागमवस्थितान् ।
स्थापयेदेवमेतस्मिन्नष्टत्रिंशन्मनोहरान् ॥ ७८
यद्वा द्वात्रिंशता हस्तैरायामपरिणाहयोः ।
चतुरस्रां भुवं कृत्वा स चतुःषष्टिकोष्ठकम् ॥ ७९
मध्ये कोष्ठचतुष्केऽस्यां रङ्गपीठं प्रकल्पयेत् ।
रङ्गपीठात् पृष्ठभागे रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत् ॥ ८०
तत्पूर्वभागे नेपथ्यभवनं साधु कारयेत् ।
अग्निकोणादिषु ततः क्रमेण स्तम्भवेशनम् ॥ ८१

---

1 BC °सुधी । 2 BC चतुर्हस्तविभूषितैः षष्ट्या यथाविधिः while though A has the same reading it has these" "marks of deletion.

ब्राह्मणाद्युपधिच्छन्नं [1]पीठनेपथ्यवेश्मनोः ।
[2]स्वार्धाक्रान्तं भुवा साकं चतुर्हस्तान्तरालतः ॥ ८२
प्रतिकोणं यथा कोणस्तम्भाभ्यां[3] सह सर्वतः ।
तथा षोडश संस्थाप्याः स्तम्भाः सूत्रानुरोधतः ॥ ८३
आयामे तेऽष्टहस्ताः स्युर्विस्तारे स्युश्चतुःकराः ।
चतसृष्वपि काष्ठासु रङ्गपीठस्य कोष्ठकाः ॥ ८४
[ते] त्रयस्त्रयोऽसंभूय स्युश्चतुःषष्टिसंख्यकाः ।
स्तम्भा एकोनपञ्चाशन्नाट्यवेश्मनि कोष्ठकाः ॥ ८५
मूर्ध्नि तेषां विचित्राणि काष्ठानि परिकल्पयेत् ।
भरणाख्येषु काष्ठेषु विचित्राः शालभञ्जिकाः ॥ ८६
कार्या मूर्द्धसु [4]तेषां स्युर्धरिण्यः शिल्पिसंस्कृताः ।
तास्वथ स्थापनीयं स्यात्[5] तिर्यग् दारुचयं दृढम् ॥ ८७
परस्परं संहताः स्युः पट्टिकास्तत्र दारुजाः ।
सुश्लिष्टसंधिकं रन्ध्रं निर्मुक्तं स्याद् यथा तथा ॥ ८८
छादनीयं प्रयत्नेन काष्ठानामन्तरालकम् ।
छादनक्रममाश्रित्य परं लोहानुसारतः ॥ ८९
तथा सुधा निधेयाऽत्र यथा चन्द्रकराः परम् ।
तत्रानुबिम्बमासाद्य चन्द्रकोटिभ्रमावहाः ॥ ९०
स्युरेवं भित्तिकर्माथो शिल्पिवर्यः प्रयोजयेत् ।
स्तम्भं वा नागदन्तं वा वातायनमथापि वा ॥ ९१
कोणं वासप्रतिद्वारं द्वारं विद्धं न कारयेत् ।
दृढमूला समा भित्तिः पक्वेष्टकचिता दृढा ॥ ९२
यथोचितद्वारदेशस्तम्भार्द्रच्छादनोचिता ।
चन्द्रबिम्बप्रतीकाशा सुधालेपविभूषिता ॥ ९३
विचित्रचित्र[6]संयुक्ता वात्स्यायनविनिर्मितैः ।
रतप्रबन्धरुचिरा नानानाटकचित्रिता ॥ ९४
नायिकानायको[7]पेतनानारूपविचित्रिता ।
लताशृङ्खलिकापिण्डीभेदबन्धविनिर्मितैः ॥ ९५

---

1 BC पीठे ने° । 2 ABC स्वस्वाक्रान्तं । 3 BC स्तम्भास्यसह° । 4 BC तेषा° । 5 ABC स्याति° । 6 BC सुयुक्ता° । 7 BC °नायिको° ।

श्रीकुम्भकर्णसङ्गीत-गीतगोविन्दरूपकैः ।
कर्तव्या चित्रिता भित्तिर्विचित्रा चित्रकर्मठैः ॥ ९६
नेपथ्यवेश्मनस्तत्र द्वारं पश्चिमतः स्मृतम् ।
एकमन्यद् रङ्गपीठप्रवेशाय प्रयोजयेत् ॥ ९७
पूर्वतो द्वारमेवं स्यात् तत्र द्वारद्वयं शुभम् ।
नेपथ्यमन्दिरे तत्र रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत् ॥ ९८
षड्दारुकयुतं तस्य विधिरत्र प्रपञ्च्यते ।
पूर्वद्वारस्य पार्श्वस्थं कर्तव्यं स्तम्भयुग्मकम् ॥ ९९
तदधश्चोर्ध्वतश्चापि दारुद्वन्द्वं मनोहरम् ।
विचित्ररचनं कार्यमेतत् षड्दारुकं भवेत् ॥ १००
ब्राह्मणादिचतुःस्तम्भाभ्यन्तराले यदीरितम् ।
रङ्गपीठं च तत् कार्यं नात्युच्चं नातिनिम्नकम् ॥ १०१
समन्तादष्टहस्तं तदादर्शतलसंनिभम् ।
स्निग्धं समतलं स्वच्छं तत्र स्यान्मत्तवारणी ॥ १०२
दक्षिणोत्तरपार्श्वस्थस्तम्भयुग्मसमाश्रया ।
साधारकाष्ठरुचिरा वर्णकैरुपभूषिता ॥ १०३
रत्नानि चात्र देयानि वज्रं पूर्वदिशि स्मृतम् ।
वैदूर्यं दक्षिणे पार्श्वे पश्चिमे स्फटिकं तथा ॥ १०४
उत्तरे तु प्रवालं स्याद् मध्ये कनकमीरितम् ।
एवमेतस्य विदुषा कर्तव्योपरिभूमिका ॥ १०५
चतुस्तम्भसमायुक्ता सुवर्णकलशोज्ज्वला ।
यथा शैलगुहाकारो जायते नाट्यमण्डपः ॥ १०६
गम्भीरशब्दवान् मन्दवातायनपरिष्कृतः ।
निर्वातोऽतिप्रयत्नेन, यस्मादेवं कृते सति ॥ १०७
कुतपस्य प्रजायेत गम्भीरध्वनितोचिता ।
पुरतो रङ्गपीठस्य मध्यपङ्क्तेः सुकोष्ठके ॥ १०८
पञ्चमे वाथ षष्ठे वा स्थानं कार्यं सभापतेः ।
निवेशनार्थमुत्सेधेनार्धहस्तं तु तत् स्मृतम् ॥ १०९

सुधाधवलितं शुभ्रं नानाभङ्गिमनोहरम् ।
अन्येष्वपि च कोष्ठेषु यथायोग्योन्नतानि तु ॥ ११०
आसनानि प्रकल्प्यानि विविधानि शुभानि च ।
नेपथ्यभित्तितो भित्तिं दशहस्तान्तरां दृढाम् ॥ १११
पञ्चहस्तोन्नतां कुर्यात् परितोऽन्यां सनिर्गमाम् ।
तत्र रक्षिजनाः स्थाप्या अप्रमत्ताः समन्ततः ॥ ११२
एवंविधानसंयुक्तं नाट्यवेश्म भुवो विभुः ।
जयायुःकीर्त्तिजननमन्यथा न शुभावहम् ॥ ११३

॥ इति नेपथ्यगृहलक्षणम् ॥

*

[सभापतिलक्षणम् ।]

रामाद्युत्तमनायकप्रतिनिधिः स्वस्थः कुलीनो युवा
पात्रापात्रविशेषवित् स्थिरतमप्रेमा कलाकोविदः ।
गीतज्ञः सकलागमार्थनिपुणो [1]विद्वत्प्रियः सत्यवाक्
स्वाधीनाखिलसेवको बहुधनोऽभीष्टार्थदानोद्धुरः ॥ ११४
रूपस्वी परचित्तविद् गुणगणग्राही कृतज्ञो गुणी
धर्मिष्ठो रसभावविज्ञनमनोहारी सुवेषः सुखी ।
शृङ्गारी बहुदोऽनपेक्ष्यविभवः कीर्तिप्रियः कामुकः
प्राप्तौचित्यविशेषविच्छुचिमनाः प्रोक्तः सभाधीश्वरः ॥ ११५

॥ इति सभापतिलक्षणम् ॥

*

[सभासन्निवेशः ।]

पीठस्यास्य पुरः सभास्तरणयुक्सद्वेदिकायां विभु-
र्हैमं स्वस्थविचित्ररत्नखचितं सिंहासनं भास्वरम् ।
अध्यासीत तदग्रदेशमहितो मन्त्री ततो दक्षिणे
नानाशास्त्रकलाविशेषकुशलाः काव्यार्थनिष्ठामिताः ॥ ११६
विश्वार्थाभिनयप्रपञ्चचतुरास्तौर्यत्रिकज्ञा रसा-
वेशाभिज्ञ[2]नवीनबुद्धिविभवाः स्वस्वामिचेतोविदः ।
भावज्ञाः कवयो विशेषविदुषः सत्पण्डिताश्चात्र ये
वैद्या ज्योतिषशास्त्रनि[3]ष्ठधिषणा ये भूपतेर्वल्लभाः ॥ ११७

1 ABC विद्धित्प्रि° । 2 ABC °भिज्ञनन° । 3 ABC नष्ट° ।

ते स्युर्दक्षिणतो विभोर्नवनवस्वस्वोचितान्यासना-
न्यध्यास्य प्रतिभाविशेषविजितेन्द्रेज्याः[1] सभापण्डिताः ।
वामेनास्य पुनः सुता नरपतेर्नैपुण्यभाजो जना
ये चान्येऽभिनयप्रवीणमतयो नृत्येष्वभिज्ञाः पुनः ॥ ११८
पृष्ठे चास्य वराङ्गना नरपतेः स्युर्वारनार्यो लसत्-
तारुण्याकरभूमयो वसतयो लावण्यलीलाश्रियाम् ।
चित्रालङ्कृतिभूषिताः सिततरैर्नेत्राञ्चलैः कामिनां
यूनां चित्तविवेकवैभवमलं[2] संच्छादयन्त्यो निजैः ॥ ११९
चञ्चद्रत्नमयोरुनूपुररणत्कारैर्विलासोल्लसद्-
भावैर्मानससंभवं निजनिजैरुद्बोधयन्त्योऽन्वहम् ।
संसिञ्जत्करचारुचामरमरुत्संवीजयन्त्यः स्मित-
ज्योत्स्नाशुभ्रितदिङ्मुखाः परवशीकारैकसत्कर्मणा ॥ १२०
अग्रे वेत्रधरा नृपेङ्गितविदो मान्येतरज्ञानिनो
दक्षा रक्षणकर्मणि प्रतिपदं संप्राप्तसंवेदकाः ।
प्रोदञ्चज्जयजीवमङ्गलशिरःसेवा[3]विदग्धाः सदा
तिष्ठेयुः परितः समीरितदृशो नित्यं नृपस्याग्रतः ॥ १२१
शश्वद्राजकुलोद्भवाः सुनिपुणा नित्यानुरक्ता नृपे
नो भिन्ना न च संहता परिगतान्योन्यानुरागस्पृहाः ।
स्पर्धाबन्धमनोहरा परिगतानेकास्त्रविद्योद्धुरा-
स्तिष्ठेयुः परितोऽस्य रक्षणविधावुद्यत्समस्तायुधाः ॥ १२२
नानादेशविचारचारुमतयो नाट्यागमे पारगा
वैदग्ध्यामृतवाहिनीजलधयश्चाञ्चल्यलेशोज्झिताः ।
द्रष्टारो विविधक्षितीश्वरसभास्थानस्य मानेप्सवो
वर्तेयुः परितोऽस्य बन्दिनिवहास्तत्कर्मसंशंसिनः ॥ १२३

॥ इति सभासन्निवेशः ॥

*

[पूर्वरङ्गः ।]

एवं तत्र समग्रलक्षणपरीवारे सभानायके-
ऽध्यासीने रुचिरोरुमौक्तिकमणिप्रायं सुसिंहासनम् ।

1 BC °न्द्रेस्याः । 2 ABC मलः । 3 BC सेवादि° ।

नाट्याचार्य उपेत्य तत्तदुचितप्रावीण्यविद्भिः समं
वर्ग्यैः संविदधाति रूपकविधेस्तं पूर्वरङ्गं सुधीः ॥ १२४
अभिनेयार्थतादात्म्यपटुः स्फुटतरो नटः ।
पदार्थाभिनयाच्चित्रं व्यञ्जयन् स्यात् तदग्रतः ॥ १२५
रसाभिधायकं नाट्यशब्दे नाट्येऽपि वृत्तितः ।
लक्षणाया वर्तमानमुभयं दर्शयन् स्फुटम् ॥ १२६
तथा च नृत्यशब्दार्थमुभयानुग्रहं वदन् ।
नृत्ये चाभिनये साक्षाद् वक्ति लक्षणयान्वयम् ॥ १२७
नाट्येनाभिनयं नृत्यशब्देन च रसं पुनः ।
वृत्त्या लक्षणया साक्षादुभयं दर्शयन् पदम् ॥ १२८
करणाङ्गहारनिचयैर्नृत्तमत्रोपदर्शयन् ।
रसः सभ्ये नटे वास्य विकलस्य जिहीर्षया ॥ १२९
स्वात्मानं तन्मयं कुर्वन्निव रङ्गमुपाश्रयेत् ।
ततः कुतपविन्यासाद्यङ्गप्रचयपेशलम् ॥ १३०
सूत्रधारः पूर्वरङ्गं प्रयुङ्क्ते नाट्यतत्त्वगम् ।
यतो रसात्मकस्यास्य प्रयोगे प्रयुयुक्षिते ॥ १३१
रज्यते वै सहृदयैः पूर्वरङ्गस्ततः स्मृतः ।
सपादभागः सकलः परिवर्त्तैः समन्वितः ॥ १३२
प्रयोगोऽयं यतो रङ्गे पूर्वमेव प्रयुज्यते[1] ।
तेनोक्ता भरताचार्यप्रमुखैः पूर्वरङ्गता ॥ १३३
रङ्गशब्देन तत् कर्मोच्यते तौर्यत्रिकाश्रितम् ।
तत्पूर्वभागो विद्वद्भिः पूर्वरङ्ग उदीरितः ॥ १३४
सोपोहनास्तद्विना वा ध्रुवा उत्थापनीमुखाः ।
सूत्रधारप्रवेशार्था यतोऽस्मिन् पूर्वमेव हि ।
प्रयुज्यते ततः पूर्वरङ्गता वास्य संमता ॥ १३५
चतुरस्र-त्र्यस्रभेदाद् द्विविधः स पुनर्द्विधा ।
शुद्धचित्रविभेदेन पृथगेवं चतुर्विधः ॥ १३६
करणाङ्गहारराहित्यं शुद्धता चित्रता पुनः ।
तत्सद्भावोऽथ चित्राद्यैर्मार्गैर्भिन्नध्रुवायुतः ॥ १३७

1 BC प्रयुते ।

चतुरस्रस्तथा त्र्यस्रः षड्विधः कैश्चिदिष्यते।
केषांचन मते मिश्रो द्वयं संमिश्रणान्मिथः ॥ १३८

*

[पूर्वरङ्गाङ्गसंग्रहः ।]

अथाभिधास्यते सम्यक् पूर्वरङ्गाङ्गसंग्रहम् ।
प्रत्याहारोऽवतरणमाश्रवणारम्भवक्त्रपाणी च ।
परिघट्टनाथ संघोटनाथ मार्गासारितं च [?] ॥ १३९
आसारितोत्थापिन्यौ नान्दी शुष्का च कृष्टाह्वा ।
रङ्गद्वारं चारी सैव महत्पूर्विका त्रिगतम् ॥ १४०
प्रस्तावनेति कथितान्येतान्यङ्गानि भारते पूर्वैः ।
अङ्गैरेभि[1]रिहाङ्गी [2]निष्पन्नः पूर्वरङ्गोऽयम् ।
तेभ्यो नैवाभिन्नो भिन्नोऽपि प्रेक्ष्यते क्वचित् सद्भिः ॥ १४१

*

[प्रत्याहारः ।]

उत्थापनीप्रयोगे [च] प्राधान्येनोपकल्पिते ।
प्रत्याहाराद्ययं याता प्राच्योदीच्यां गतामत्र ॥ १४२

*

अत्राश्रावणिकाद्यं यदङ्गषट्कं क्रमेणोक्तम् ।
देवस्तवार्थमपदं पदबद्धं वा द्विधा तदुद्दिष्टम् ।
अपदं तत्र तु गीतं निर्गीतं कीर्तितं तच्च ॥ १४३
यत् पदबद्धं गीतं तद्देवप्रीतिदं बहिर्गीतम् ।
तस्मात् पदैर्निबद्धं प्रयोज्यमाश्रावणादीह ॥ १४४

*

प्रायेण तु बहिर्गीतमन्तर्जवनिकागतैः ।
तन्त्रीभाण्डकृतं तज्ज्ञैः प्रयोक्तव्यमतन्द्रितैः ॥ १४५
ततो जवनिकां हित्वा समस्तकुतपैः सह ।
नृत्य-पाठ्यकृतानि स्युः पूर्वरङ्गाङ्गकानि तु ॥ १४६
ततः पुनः प्रयोक्तात्र मन्द्रकादेस्तु मध्यतः ।
प्रयोज्यं किञ्चिदेकं तु वर्द्धमानमथापि वा ॥ १४७
पूर्वरङ्गे प्रयुञ्जीत ततोऽन्याङ्गसमुच्चयम् ।
अथामीषां क्रमाद् वक्ष्ये[3] लक्षणानि समासतः ॥ १४८
ज्ञेयः कुतपविन्यासः प्रत्याहारः स चेदृशः ।

---

1 ABC अङ्गैरिभि० । 2 ABC निष्पनः । 3 ABC वक्षे ।

प्राङ्मुखः स्यान्मार्दलिको रङ्गे प्रत्यगवस्थितः ।
गान्धर्वाचार्यकौ याम्ये रङ्गभूमावुदङ्मुखौ ॥ १४९
तस्य दक्षे मौखरिको [1]वैणिको वामदेशगः ।
निवेशनं गायकानाम्–

॥ इति प्रत्याहारः ॥

*

[अवतरणम् ।]

–तथावतरणं स्मृतम् ॥ १५०
तच्च रङ्गोत्तरस्यां स्याद् याम्यदिग्मुखगोचरम् ।
पञ्चषैर्विस्तृता हस्तैस्तथा [2]वसुकरायता ॥ १५१
शरच्चन्द्रप्रतीकाशाऽथवा बालार्कसंनिभा ।
नानावर्णाऽथवा रत्ननिकरैः खचिता नवा ॥ १५२
कोणेषु परितश्चापि मुक्ताजालपरिष्कृता ।
चिह्निता दैवतैस्तत्तत्स्थानभागनिवेशितैः ॥ १५३
मध्ये महेश्वरः पार्श्वे चतुर्मुखचतुर्भुजौ ।
सूर्याचन्द्रमसौ तेषां सव्यदक्षिणपार्श्वयोः ॥ १५४
तारकाः स्युस्तत्परितो देव्यस्तत्कोणगाः स्मृताः ।
वायौ सरस्वती वह्नौ तारकान्वीशकोणगा ॥ १५५
[3]भैरवी नैर्ऋते कामगामिनी दक्षिणे पुनः ।
गोरक्षः सिद्धनाथस्तु पश्चिमे पूर्वदिग्गतः ॥ १५६
मीननाथ उत्तरस्यां चतुरङ्गः क्रमादिमाः ।
देवताः पूजयेत् पूर्वं स्थानेषूक्तेषु मन्त्रवित्[4] ॥ १५७

॥ इति अवतरणम् ॥

*

[आश्रावणा ।]

तत आश्रावणापाणित्रयः क्रमवशेन यत् ।
स्वल्पमादौ श्रूयमाणं मृदङ्गाद्यस्य मार्जनम् ।
तस्मात् तल्लक्षणं पूर्वं मया सम्यगुदीरितम् ॥ १५८

॥ इति आश्रावणा ॥

*

[आरम्भः ।]

ततः स्वल्पेष्ववहितेष्वङ्गमारम्भसंज्ञकम् ।
तद् यत्र गायकाः साक्षात् सप्तस्वरपरिग्रहम् ॥ १५९

---

1 BC विणिको । 2 ABC वस्तु । 3 ABC नैर्ऋतौ । 4 ABC °न्त्रवत् ।

कृत्वा कुर्युस्तालयुक्तं गीतं तत्र ध्रुवाः पुनः ।
सप्तस्वरोद्भवास्ताः[1] स्युः सुगतिश्च सुगन्धिनी ॥ १६०
रौद्री पाश्चादनी तद्वत् पाश्चालिन्यथ दैवती ।
अश्विनीति क्रमादाभिर्ग्रहणं स्यात् प्रसादनम् ॥ १६१
चतुरस्रभिदास्तिस्रस्तिस्रोऽप्याद्यासु तत्पराः ।
तिस्रस्त्र्यस्रभिदास्वेवं दैतिनीवदिहाश्विनी ॥ १६२
एतद्गाथाभिरा[2]तोद्यवादनं राजशिष्यया ।

॥ इत्यारम्भः ॥

*

[वक्रपाणिः ।]

तथा पाणिविभागार्थं वक्रपाणिर्विधीयते ॥ १६३
अत्र वक्राङ्गान्तमाहुः दुष्करं पाणिरुच्यते ।
गाथालक्षितपूर्वाला[3]पाभिरातोद्यवादनम् ॥ १६४

॥ इति वक्रपाणिः ॥

*

[परिघट्टना ।]

[4]तन्त्र्योजःकरणार्थं च भवेच्च परिघट्टना ।
एतद्गाथाभिरातोद्यं वादयेद् वादकोत्तमः ॥ १६५

॥ इति परिघट्टना ॥

*

[संघोटना ।]

वाद्यवृत्तिविभागार्थं भवेत् सं[5]घोटनाविधिः ।
अङ्गुष्ठाभ्यां च तर्जन्या तन्त्रीवादनतो भवेत् ।
गाथाभिरुक्तपूर्वाभिरिहातोद्यं प्रवादयेत् ॥ १६६

॥ इति संघोटना ॥

*

[मार्गासारितम् ।]

तन्त्रीभाण्डसमायोगाद् मार्गासारितमिष्यते ।
चित्रादि त्रिषु मार्गेषु करणैर्धातुभिः समम् ॥ १६७

॥ इति मार्गासारितम् ॥

*

---

1 ABC °स्ता । 2 ABC °रात्मेद्द° । 3 ABC पूर्वायाला° । 4 ABC तंत्रौजः ।
5 ABC संखोटना ।

[आसारितम्]

तालो मृदङ्गस्तन्त्री च क्वचिदेकैकशः क्वचित् ।
युग्मीभूय प्रधानं स्याद् गुणः सर्वव्यपेक्षया ।
षड् ध्रुवाः क्रमतोऽत्र स्युः [1]प्राधान्ये त्रितयस्य तु ॥ १६८
अथासारितमत्र स्यान्मार्गासारितपूर्वकम् ।
आपूर्वात् सरतेर्धातो रूपे पाताः पुरोदिताः ॥ १६९
[2]आसार्यन्त इति प्रोक्ता बुधैरासारिताभिधाः ।
एतस्योदाहृतिः पूर्वमुक्ता लक्षणपूर्विका ॥ १७०

॥ इत्यासारितम् ॥

*

[पाठवृद्धियुक्तियुक्तमासारितम् ।]

[3]यान्यवोचमहं पूर्वं गीतकानि चतुर्दश ।
वर्धमानादिकं चैव सर्वमत्रैव योजयेत् ॥ १७१
उपक्रमे गीतकानां प्रयोगसूचनादिभिः ।
उपोह्यन्ते स्वरा यस्मात् तस्मादुक्तमुपोहनम् ॥ १७२
तदुक्तं पूर्वमस्माभिश्चतस्रः कण्डिका अपि ।
विशालासंगते तत्र कनिष्ठासारितोद्भवे ॥ १७३
मध्यमासारिताज्जाता विशाला संगता तथा ।
सुनन्देति च तिस्रोऽपि ज्येष्ठासारितसंभवाः ॥ १७४
सुमुखी च सुनन्दा च संगता च विशालिका ।
उक्तपाते क्रमैरेतैरासारितविधिक्रमात् ॥ १७५
पिण्डीबन्धाः प्रदर्श्यन्ते वर्धमानक्रमेण च ।
ते चेष्ट[4]देवतारूपा इष्टचित्राश्रिता अथ ॥ १७६
विलम्बितलयेऽभीष्टमान आसारितस्य तु ।
कलाकलापसंयुक्तोपोहनस्यार्थभागिकाः ॥ १७७
समाश्चतस्रश्चतुरा नर्तक्यः [5]पुष्पपाणयः ।
अन्तर्धानमपाकृत्यालङ्कुर्यू रङ्गभूमिकाम् ॥ १७८
तत्रावकीर्य पुष्पाणि नमस्कुर्युः क्रमेण ताः ।
इन्द्रादिलोकपालेभ्यः परिवर्त्य चतुर्दिशम् ॥ १७९

---

1 ABC प्रधान्ये । 2 ABC आचार्यन्त । 3 ABC यान्येवो° । 4 BC °देवाता
5 BC पुष्पेपुष्पपाणयः ।

वन्दनानि प्रकुर्वन्ति पुनश्च परिवर्तनात् ।
उपोहनार्थाभिनयमङ्गहारैः प्रयुज्य ताः ॥ १८०
पिण्डं बध्नन्ति तत्रस्थाः कनिष्ठासारिताश्रयम् ।
उपोहनं पञ्चकलं सूचया भावयन्ति ताः ॥ १८१
वैशाखरेचितेनासामेका भूत्वा पृथक् ततः ।
अभिनीयोपोहनार्थं दर्शयेच्च तदेतराः ॥ १८२
पर्यस्तकाद्यङ्गहारैः प्रनृत्येयुस्ततस्तु ताः ।
पिण्डीबन्धं समास्थाय भावयन्त्यङ्कुरेण तु ॥ १८३
प्रथमोपोहनस्यार्थं परिवर्त्य पुनश्च ताः ।
वैशाखरेचितं कृत्वा करणं रङ्गपीठके ॥ १८४
विकीर्य पुष्पनिचयं [1]कुर्युर्वस्तुविभावनम् ।
ताभ्य एका[2] विनिश्चित्य प्रथमं वस्तु भावयेत् ॥ १८५
तदेव चारु चातुर्याद् दर्शयेन्नृत्यतः पुनः ।
ततः पिण्डीगताः सर्वाः पिण्डीबन्धमुपागताः ॥ १८६
सूचया षट्कलं[3] कुर्युर्द्वितीयोपोहनं पुनः ।
तस्यैवं करणं ज्ञेयं तदर्थस्य विभावनम् ॥ १८७
अपसृत्य द्वितीयाथ ताभ्यो वस्तु द्वितीयकम् ।
[4]चञ्चत्पुटेन तालेनाभिनयेत् प्रथमा तदा ॥ १८८
प्रनृत्येदङ्गहारेण चतस्रो मिलिताः पुनः ।
विधाय शृङ्खलाबन्धं द्वितीयस्यात्र वस्तुनः ॥ १८९
अङ्कुरेण पुनः कुर्युरुपोहनमथैकिका ।
ताभ्यो निःसृत्याभिनयेद् द्वितीयं वस्तु तत्परम् ॥ १९०
प्रदर्शयन्त्यङ्ग[5]हारैस्तदर्थं मिलिता अथ ।
पिण्डीबन्धं समास्थाय समं कुर्युरुपोहनम् ॥ १९१
एवं तृतीयाऽभिनये तृतीयं वस्तु रङ्गगा ।
षट् पितापुत्रकेण द्वे कुर्यातामङ्गहारतः ॥ १९२
नर्तक्यो [6]मिलिताः पश्चाल्लताबन्धमुपाश्रिताः ।
अङ्कुरेण पुनः कुर्युरुपोहनमथ स्फुटम् ॥ १९३

---

1 A कुयुर्कुयु । 2 ABC एक । 3 ABC षद्फलं । 4 ABC चचत्° ।
5 ABC °यत्यङ्ग° । 6 ABC मिमिला: ।

अन्योन्यं मिलिताः प्राग्वत् तृतीया प्रथमान्विताः ।
तृतीयं वस्त्वभिनयेन्नृत्यं कुर्याद् द्वितीयिका ॥ १९४
ततः सङ्गत्य पिण्डीस्थाः कुर्युस्तुर्यमुपोहनम् ।
सूचयाष्टकलं पश्चादपसृत्य चतुर्थिका ॥ १९५
चतुर्थं वस्त्वभिनयेदङ्गहारं ततः परा ।
कुर्वीरन् मिलितास्तिस्रश्चतस्रोऽपि ततः परम् ॥ १९६
अङ्कुरेण चतुर्थस्य वस्तुनो भेद्यकाभिधम् ।
बन्धमास्थाय कुर्वीरन्नुपोहनमतः परम् ॥ १९७
विश्लिष्यान्योन्यमाद्याभ्यां द्वाभ्यां साकं तृतीयया ।
अङ्गहारैरभिनयेच्चतुर्थी वस्तु तुर्यकम् ॥ १९८
अथ सर्वासु नर्तक्यः पिण्डीबन्धमुपाश्रिताः ।
चतुर्थोपोहनं कुर्युरपसृत्य तृतीयिका ॥ १९९
तृतीयं वस्त्वभिनयेत् तिस्रो नृत्यन्ति तत्पराः ।
लताबन्धमथास्थाय कुर्युः पूर्वमुपोहनम् ॥ २००
प्रथमं वस्त्वभिनयेत् प्रथमाऽपश्रिता ततः ।
तदेतराः प्रनृत्यन्ति मिलिताः पुनरेव ताः ॥ २०१
कुसुमाञ्जलिमाकीर्य चतस्रोऽपि तदा समम् ।
अङ्गहारैः प्रनृत्याथो भवन्त्यपश्रितास्तु ताः ॥ २०२
पिण्डी शृङ्खलिका चैव लताबन्धोऽथ भेद्यकः ।
पिण्डीबन्धश्चतुर्थेऽपि तल्लक्षणमथोच्यते ॥ २०३
स चेष्टदेवता[1]रूपोऽनुकारेण स्मृतो बुधैः ।
तस्य देहानुकारेण विधेया च[2] विपश्चिता ॥ २०४
पिण्डाकारेण विज्ञेयः पिण्डीबन्धस्तदा पुनः ।
शृङ्खलात्मा भवेद् गुल्मो लता जालस्वरूपिणी ॥ २०५
[3]संदंशो भेद्यको रूपं चतुर्थमिदमीरितम् ।
सूचा स्यात् पिण्डिकाबन्धादङ्कुरैः शृङ्खलादिभिः ॥ २०६
उभयं स्मृतमारोहेऽवरोहेऽङ्कुर ईरितः ।
यस्मिन्नासारिते पूर्वैर्यदीरितमुपोहनम् ॥ २०७

1 ABC °तारूनुकारेण । 2 ABC चा । 3 BC संदशो ।

प्रतिवस्तु तदावृत्तिरिति केचन मन्वते ।
स्फुटं रक्तं विभक्तं च समं शुद्धप्रहारजम् ॥ २०८
नृत्यानुगं वर्धमाने वाद्यवादनमिष्यते ।
कनिष्ठासारितस्यायं विधिरुक्तः सविस्तरः ॥ २०९
अन्येष्वासारितेष्वेष विज्ञातव्यो विधिर्बुधैः ।
सर्वेष्वासारितेष्वत्र नर्तकीनां प्रवेशनम् ।
वैशाखरेचितेन स्यादिति राजेन्द्रसंमतम् ॥ २१०

नर्तक्यः षोडशैवं सुकुसुमनिचयं रङ्गभूमौ विकीर्य
प्रीत्यै शम्भोः प्रनृत्यन्त्यसकृदभिनयैरर्थजातं प्रदर्श्य ।
एतद् वै पात्रवृद्धिप्रभवमविकलं वर्धमानं प्रयोज्यं
शम्भोरग्रेऽथ सर्वक्षितिपतिपुरतो नाल्पभूभर्तुरग्रे ॥ २११
यस्मात् सर्वक्षितीशः स्वयमिह भगवानित्थमावेदितं प्राग्-
अन्यत्रैकं सुगीतं विधिवदनुभवाद् देशकालानुरोधात् ।
योज्यं गीतप्रवीणैरभिमतसुरताप्रीतये युक्तियुक्तं
क्षोणीसुश्रोणिभर्त्रा निगदितमखिलं बुद्धिसंस्थं विधाय ॥ २१२

॥ इति पाठवृद्धियुक्तियुक्तमासारितम् ॥

*

[उत्थापना]

अतः परं प्रवक्ष्यामि ध्रुवामुत्थापनाभिधाम् ।
सूत्रधारप्रवेशार्थं प्रयोगं [1]नान्दिपाठकाः ॥ २१३
उत्थापयन्ति रङ्गेऽस्मिन् प्रयोगं पूर्वमेव यत् ।
तस्मादुत्थापनं प्रोक्तं राजराजेन धीमता ॥ २१४
गौ लो ग्लौ लास्त्रयो गश्च लौ ग एकादशाक्षरैः ।
चतुर्भिश्चरणैः प्रोक्ता ध्रुवा प्रागुक्ततालयुक् ॥ २१५
यथा–

गङ्गातरङ्गपरिधौतजटम्
गौरीकुचद्वयनिषिक्तकरम् ।
देवेन्द्रमुख्यसुरपूज्यपदम्
वन्दामहे शिवममेयपदम् ॥ २१६

शतौ द्विद्विकलौ सं चैककलं त्रिकलस्तु सं ।
प्रत्येकं चरणेष्वत्र लयत्रितयमेव च ॥ २१७

1 ABC नादि ।

परिवर्तास्तु चत्वारस्तेषामाद्यस्थिते लये ।
द्वात्रिंशता कलानां स्यात् लये मध्ये द्वितीयकः ॥ २१८
सोऽपि तावत् कलस्तावान् तृतीयोऽपि कलस्ततः ।
तावानेव चतुर्थस्तु परं [1]तस्याद्भुते लये ॥ २१९
ध्रुवेयं चतुरस्रा स्यादस्यां पाणित्रयं भवेत् ।
संनिपातैश्चतुर्भिः स्यात् परिवर्त इहैककः ॥ २२०
प्रथमे वा द्वितीये वा तृतीये संनिपातके ।
पूर्वस्मिन् परिवर्तेऽत्र वाद्यभाण्डपरिग्रहः ।
सूत्रधारप्रवेशोऽत्र द्वितीये परिवर्तके ॥ २२१
तत्पारिपार्श्वकौ स्यातां सभृङ्गारकजर्ज्झरौ ।
सपुष्पाञ्जलयः शुक्लवस्त्राः सुमनसस्त्रयः ।
कृतमङ्गलसंस्कारा वैष्णवस्थानके स्थिताः ॥ २२२
प्रविशेयुस्ततः सूत्रधारः पञ्चपदीं व्रजेत् ।
दक्षिणं चरणं पार्श्वाक्रान्तचार्या समुत्क्षिपेत् ॥ २२३
तालत्रयं ततः सूच्या वामं चरणमुत्क्षिपेत् ।
सद्वयः सूत्रधारोऽथ गत्वा पञ्चपदीं शनैः ॥ २२४
रङ्गमध्ये पुष्पमोक्षैः पूजयेत् पद्मसंभवम् ।
नमस्कुर्यात् ततो देवं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २२५
कलाभिः स्यात् षोडशभिः पञ्चपद्यां प्रवेशनम् ।
पुष्पाञ्जलिविमोक्षे तु कलाष्टकमुदीरितम् ॥ २२६
तावतैव तु कालेन द्वितीये परिवर्त्तके ।
नमस्कार्यं देवतानां तृतीये परिवर्तके ॥ २२७
आक्रामेन्मण्डलं पूर्णं दक्षिणं पादमुद्धरन् ।
सूच्या सव्येन दक्षं च विद्धदक्षेण वामकम् ।
सूच्यैवैवं प्रकुर्वीत मण्डलस्य प्रदक्षिणम् ॥ २२८
आचम्य प्रोक्ष्य कर्तव्यं जर्जरग्रहणं ततः ।
अन्योन्यं पादयोर्वेधश्चतुष्कल उदाहृतः ।
प्रदक्षिणं चाष्टक[2]लमाचामे त्रिकलेन तु ॥ २२९

1 ABC सस्याद्भुते । 2 ABC कलं ।

जर्जरग्रहणं कार्यं [1]कलयैकिकयैव तु ।
तृतीये परिवर्ते च तत्र मन्त्रमिमं जपेत् ॥ २३०
नक्षत्रेऽभिजिति त्वं तु प्रसूतः शत्रुकर्शनः ।
जयं चाभ्युदयं चैव पार्थिवाय प्रयच्छ वै ॥ २३१
चतुर्थे परिवर्त्तेऽथ सूत्रभृत्[2] कुतपोन्मुखः ।
विक्षेपवेधौ रचयन् पदौ[3] पञ्चपदीं व्रजेत् ॥ २३२
शशताशा सन्निपातौ पातास्त्र्यस्त्रध्रुवागताः ।
द्वादशैस्तैर्द्विगुणितैः परिवर्तद्वयं भवेत् ॥ २३३
परिवर्तद्वयं चात्र कला द्वादशकं भवेत् ।
आदावन्तेऽष्टमे तुर्ये दशमे गाः परे चलाः ॥ २३४
इयमुत्थापनी त्र्यस्त्रापातास्तालादिका इह ।
चतुरस्त्रात् पादहीनाः–

*

[परिवर्तिनी ।]

अथ स्यात् परिवर्तिनी ॥ २३५
सूत्रभृत्प्रमुखा अस्यां परिवर्त्य चतुर्दिशम् ।
कुर्वन्ति लोकपालानां वन्दनानि यतस्ततः ॥ २३६
परिवर्तिनी ध्रुवाऽस्यां तु सर्वे ला अन्तिमो गुरुः ।
चत्वारश्चरणा छन्दो जगती चातिपूर्विका[4] ॥ २३७
यथा–त्रिनयनमभिनवमृषभगतिं, अनपररदनवदनकलनम् ।
मदनकदनकरनयनवरं भजत भुवनभयशमनशिवम् ॥ २३८
अस्यामाद्याश्चतस्रः स्युः कला गुरुतया [च याः] ।
चतुर्लाः स्युः परा इत्थं कलाः षोडश कीर्तिताः ॥ २३९
ताभिरष्टौ संनिपाताः संनिपातद्वयं तथा ।
भवेत् प्रतिदिशं कुर्यात् दिङ्नाथेभ्यो नमः क्रमात् ॥ २४०
विक्षेपवेधौ रचयन् पूर्वोक्तः क्रमतः सुधीः ।
प्राङ्मुखः प्रणमेत् पञ्चपदीं गच्छन् सुराधिपम् ॥ २४१
उत्क्षिप्य दक्षिणं पादं वामवेधेन पूर्ववत् ।
कुर्वन् पञ्चपदीं तत्र निवर्तेत कलाद्वयात् ॥ २४२
कलाद्वयेन गमनमियमत्र चतुष्कली ।
एकैकाशाधिनाथस्य नमस्करणकर्मणि ॥ २४३

1 ABC कलाये० । 2 BC भूत्० । 3 ABC पदो० । 4 ABC °र्विकाम् ।

एवं चतुर्दिगीशानां नमस्कारादनन्तरम् ।
शिव-विष्णु-विरञ्चिभ्यः प्राङ्मुखो रङ्गमध्यगः ।
पुंस्त्रीनपुंसकपदै[1]र्नमस्कुर्यात् क्रमेण तु ॥ २४४
दूरमुत्क्षिप्तमत्र स्यात् पुरुषं स्त्रीपदं पुनः ।
किञ्चिदुत्क्षिप्तपरमं समं क्षिप्तं नपुंसकम् ॥ २४५
पुमानित्थं दक्षपादं कृत्वा त्रेधा नमस्क्रियाम्[2] ।
कुर्यान्नारी तु वामांह्रिमेवं कृत्वा द्विधा चरेत् ।
दक्षं न[3]पुंससंज्ञेयमुभयोस्तुल्यलक्षणम् ॥ २४६
स्त्री विष्णुः पुरुषः शम्भुः पदं ब्रह्मा नपुंसकम् ।
एवं कृते सूत्रभृता विधिना परिवर्तने ॥ २४७
चतुर्वर्णानि कुसुमान्यादायाञ्जलिना नटी ।
प्रविशेत् तत्प्रवेशे[4] च ध्रुवा प्रावेशकी यथा ॥ २४८
सत्पुस्तकोल्लसितपाणितलामुद्यच्छशाङ्कसमकान्तिमुखाम् ।
भक्तेष्टदानकरपद्मयुगां वन्दामहे कमलसम्भवजाम् ॥ २४९
सूत्रधाराञ्जलौ पुष्पमोक्षं कृत्वा चरेन्नटी ।
दिक्पतीनां वन्दनानि सूत्रधारोक्तवर्त्मना ॥ २५०
आतोद्यवादनं तत्र विना गानेन वर्णितम् ।
नानावर्णैश्च कुसुमैर्जर्जरातोद्यपूजनम् ॥ २५१
सूत्रभृन्नर्तकी तद्वत् सूत्रधारस्य चार्चयेत् ।
तदाक्षिप्तिकिका ज्ञेया ध्रुवा सात्र यथा भवेत् ॥ २५२
कुण्डलमण्डितगण्डयुगं भूधरकन्दरकृतवसतिम् ।
सुन्दरचन्द्रकलाकलितं शम्भुमहं प्रणमामि विभुम् ॥ २५३
चतुर्भिश्चरणैरेवं भूषितामनुमातृभिः ।
आक्षिप्तिका ध्रुवा कार्या व्यपकृष्टामहं[5] ब्रुवे ॥ २५४
चतुरस्रामष्टकलां स्थायिवर्णां स्थिते लये ।
खद्वयं गद्वयं गो लौ गावेवं चरणाङ्किता ॥ २५५
पङ्क्तौ षोडशमात्राभिरपकृष्टा ध्रुवा यथा ।

---

1 ABC पदैन० । 2 ABC नमस्कयाम् । 3 ABC °पुनषं । 4 BC प्रवेश ।
5 BC °मह° ।

हेलाविदलितकामशरीरं लीलानिर्ज्जितदानवराजम् ।
देहार्धीकृतभूधरसूनुं वन्दे शम्भुं त्रिभुवननाथम् ॥ २५६

शशताताशसं द्विः समितिपाताः कलाष्टके ।
ध्रुवाभिश्चतसृभिः स्यात् परिवर्तोऽग्रिमः पुनः ।
शेषास्त्रयस्तु तिसृभिस्तत्राद्या परिकीर्तिता ॥ २५७

इहाभिदधिरे केचिद् गणैस्तां भ्यादिभिः पृथक् ।
ध्रुवयोः परिवर्तिन्या कृता नृत्यं पुरा यथा ॥ २५८

प्रथमे परिवर्त्ते तु ताभ्यो वक्रोद्भवस्तथा ।
बहुपादो वह्निजश्चेत्याशीर्नृत्यप्रपञ्चनम् ॥ २५९

परिवर्तेषु शेषेषु विदध्युर्विधिनोदितम् ।

॥ इति परिवर्तिनी ॥

*

[नान्दी ।]

इमां गीत्वा पठेन्नान्दीं सूत्रधारः समाहितः ।
मध्यमं स्वरमाश्रित्य देवद्विजमहीभृताम् ॥ २६०

आशीर्वाचनसंयुक्तं पदैरष्टभिरन्विताम् ।
दशभिः केचिदिच्छन्ति पदैर्द्वादशभिः परे ॥ २६१

देवेभ्योऽस्तु नमस्कृतिर्द्विजकुलं संवर्धतां श्रेयसा
पृथ्वीशाः पृथिवीं प्रशास्तु सकलां भूरस्तु सस्योत्तरा ।
काले वर्षतु पुण्यवारिजलदो नन्दन्तु गावश्चिरं
देशः क्षेमसुभिक्षवान् भवतु नो राजास्तु सद्धर्मवान् ॥ २६२

राष्ट्रं चास्तु निरामयं च लभतां रङ्गः प्रतिष्ठां परां
प्रेक्षाकर्तुरिहास्तु धर्मविभवो ब्रह्मद्विषो यान्त्वधः ।
कीर्तिः काव्यकृतोऽस्तु भक्तिरचला भूयादुमेशे सदा
तत्तद् भूरिभिरन्वहं विलसताद् धर्मस्य रक्षाकरः ॥ २६३

एवं द्वादशभिर्युक्ता पदैर्नान्दी निदर्शिता ।
अन्यद् भेदद्वयं चास्या ऊह्यतामनया दिशा ॥ २६४

[1]नान्दीपदान्तरेष्वेवमेवं भूयादितीरिणौ ।
उक्तार्थसप्रपञ्चज्ञौ भवेतां पारिपार्श्वकौ ॥ २६५

---

1 ABC नादी ।

तत् सप्रपञ्चवाक्यादिनान्दीभेदसमुच्चयम् ।
[1]भरताद् ज्ञेयमत्रोक्तैर्विस्तरः स्यान्महानिति ॥ २६६

॥ इति नान्दी ॥

*

[शुष्कापकृष्टा ।]

यत्र शुष्काक्षरैरेव ह्यपकृष्टा तु या ध्रुवा ।
यस्मादभिनयात् [2]सूत्रं प्रथमं ह्यभिसार्यते ॥ २६७
तस्मात् शुष्कापकृष्टेयं जर्जरश्लोकदर्शिका ।

॥ इति शुष्कापकृष्टा[3] ॥

*

[पूर्वरङ्गविधिः ।]

रङ्गद्वारमतो ज्ञेयं वागङ्गाभिनयात्मकम् ॥ २६८
नेयं चारीप्रचारं सहत इह मही न क्षमं वः[4] स्तुतीनां
ब्राह्मं सद्म क चाशापदमिह भगवंस्ते भुजोत्क्षेपणानाम् ।
ब्रह्माण्डाघात[5]भीत्या परिहर विषमं ताण्डवाटोपमेवं
नृत्यारम्भे भवान्या भवतु जनमुदेऽभ्य[6]र्थितश्चन्द्रचूडः ॥ २६९
वागङ्गाभिनयोपेतमिति पद्यमुदाहृतम् ।
शेषं लक्षणमेतस्य भरतादवगम्यताम् ॥ २७०
ततश्चारीसंज्ञं समं शृङ्गारचरणाद् भवेत् ।
रौद्रप्रचरणात्रापि [?दत्र] महाचारीति कीर्तिता ॥ २७१
विदूषकः सूत्रधारस्तथा वै पारिपार्श्वकः ।
यत्र कुर्वन्ति संजल्पं तदत्र त्रिगतं मतम् ॥ २७२
प्रकृतस्यैव कार्यस्य सिद्धत्वस्यानुसूचकम् ।
उपायोपेयभावेन कार्यसिद्धिव्यपाश्रयम् ॥ २७३
कविनाम्नालङ्कृतं च वाक्यं यत्र प्रयुज्यते ।
सा स्यात् प्ररोचना नाम वस्तुप्रस्तावनाभिधा ॥ २७४
एभिरङ्गैः प्रयुक्तैः स्यात् तत्तदैवतपूजनम् ।
केषाञ्चिल्लक्षणं प्रोक्तमिहोदाहरणैः सह ॥ २७५
प्रयोगस्य फलं शेषं लक्ष्मोदाहरणे तथा ।
भरतादवगन्तव्यं नेह विस्तरशङ्कया ॥ २७६

॥ इति पूर्वरङ्गविधिः ॥

*

---

1 ABC भरतान् । 2 ABC सूत्र । 3 ABC शुष्का च कृष्टा । 4 BC संवोस्तु° । 5 BC ब्रह्माण्डघोत । 6 ABC °भ्यार्थित ।

[अभिनयनृत्यम् ।]

*निष्क्रान्ते सूत्रधारेऽथ पारिपार्श्वकसंयुते ।
प्रविशेन्नर्तकी तत्रायतस्थानकमाश्रिता ॥ २७७
नत्वा देवानथ क्षिप्त्वा रङ्गे पुष्पाञ्जलिं ततः ।
अभिनेतुं प्रक्रमतेऽभिनयान् सा यथारसम् ॥ २७८
वक्ष्येऽतोऽभिनयानादावभिनेयार्थसाधनम् ।
यस्मादुपेयधीर्न स्याद्विनोपायधिया क्वचित् ॥ २७९
व्यञ्जयन्ती रतिमुखान् भावान् या वासनामयान् ।
रसावसानाऽभिनयो भवन्ती व्यापृतिर्नटे ॥ २८०
[1]चातुर्विध्यात् स्वहेतोः स चतुर्धा गदितो बुधैः ।
आङ्गिको वाचिकस्तद्वदाहार्यः सात्त्विकः परः ॥ २८१
तत्राङ्गिकोऽङ्गैर्निर्वृत्तः शिरःप्रभृतिभिर्भवेत् ।
गाथागीतः प्रबन्धाद्यो वाचिकस्तद्भवत्वतः ॥ २८२
भूषणादिरिहाहार्यमाहार्यस्तत्प्रकाशितः ।
सीदत्यस्मिन् मनः सत्त्वं सात्त्विकस्तेन भावितः ॥ २८३
एवं व्यवस्थिते राजा शास्त्रसागरपारगः ।
आङ्गिके सात्त्विकाहार्यान्तर्भावाद्भक्ति [2]तद्विदः ॥ २८४
नाट्यमार्गोपाधिभिन्नं द्विधा नृत्यमुदीरितम् ।
नृतेः क्तप्रत्यये रूपं देशीनृत्तमिहोदितम् ॥ २८५
नाट्यं मार्गं च देशीयमुत्तमं मध्यमं तथा ।
अधमं क्रमतो ज्ञेयं नृत्यत्रितयमुत्तमैः ॥ २८६

[लास्यम् ।]

लास्यताण्डवभेदेन त्रयमेतद् द्विधा कृतम् ।
ललना[3]ललितैरङ्गरचनोपचितैः शुभैः ॥ २८७
प्रयोगैः सुकुमारैर्यत् साधितं लास्यमत्र तत् ।
लासाः [स्त्री] पुंसयोर्भावास्तत्राहा ये(?र्हार्थे) तु तद्धिते ॥ २८८
साधावर्थे लास्यशब्दः कामोल्लसनहेतुकः ।
मृदङ्गहारकरणे चारी [4]चरणकोमलः ॥ २८९

*

* Verses 277 to 284 are repeated in ABC as 81 to 88 of the preceding section. 1 BC चातुर्वैधाः A. चातुर्विध्याः । 2 ABC तद्विताम्; ABC तद्विदः । 3 ABC ललिते । 4 ABC रचण ।

[ताण्डवम् ।]

ताण्डवं तद्भवेद्यत्तु प्राधान्येन प्रवर्तितम् ।
करणैरङ्गहारैश्च प्रयोगे उद्धतैरिह ॥ २९०
[1]तण्डुना निर्मिते नृत्ये प्राहुर्भेदत्रयं परे ।
विषमं विकटं लघ्विव्यत्र तद्विषमं मतम् ॥ २९१
यदभ्यासवशाद्रज्जुभ्रमणादि प्रदर्श्यते ।
विरूपवेषावयवव्यापारं विषमं मतम् ॥ २९२
करणैरञ्चिताद्यैर्यत् प्रयुक्तं तद्भवेल्लघु ।
सङ्कीर्णं तद्भवेन्नृत्यं यदेतत्त्रयसंकरात् ॥ २९३
सर्वेष्वभिनयेष्वत्र व्यापारैराङ्गिकैर्यतः ।
उत्पद्यन्ते नृत्यभेदाः सप्रपञ्चा अनेकशः ॥ २९४
अतः प्रयत्नतः सर्वान् तानहं वच्मि यत्नतः ।
अत्राङ्गाभिनयः साक्षादङ्गविज्ञानपूर्वकः ॥ २९५
तत्राङ्गानि शिरो हस्तौ वक्षः पार्श्वे कटीतटम् ।
पादाविति षडुक्तानि भरताचार्यसंमते ॥ २९६

यथा चाह भगवान् भरताचार्यः–

[सामान्याभिनयः ।]

सामान्याभिनयो नाम ज्ञेयो वागङ्गसत्त्वजः ।
तत्र कार्यः प्रयत्नस्तु नाट्यं सत्त्वे प्रतिष्ठितम् ॥ २९७
इह भावा रसाश्चैव दृष्ट्यामेव प्रतिष्ठिताः ।
दृष्ट्या हि सूचितो भावः पश्चादङ्गैर्विभाव्यते ॥ २९८
न ह्यङ्गाभिनयात् कश्चिद् ऋते रागः प्रवर्तते ।
सर्वस्य सहजो रागः सर्वो ह्यभिनयोऽर्थजः ॥ २९९
वाङ्मयानीह शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च ।
तस्माद्वाचः परं नास्ति वाचः सर्वस्य कारणम् ॥ ३००
एतेऽभिनयविशेषाः कर्तव्याः सर्वभावसंपन्नाः ।
अन्येऽपि लौकिका ये ते सर्वे लोकतः साध्याः ॥ ३०१
नानाविधैर्यथा पुष्पैर्मालां बध्नाति माल्यकृत् ।
अङ्गोपाङ्गै रसैर्भावैस्तथा नाट्यं प्रयोजयेत् ॥ ३०२
या यस्य लीला नियता गतिश्च
रङ्गप्रवृत्तस्य विधानयुक्ता ।

1 BG तमुना ।

तामेव कुर्यादवियुक्तसत्त्वो
यावत्तु रङ्गात् प्रतिनिःसृतः स्यात् ॥ ३०३
एवमेते मया प्रोक्ता भावा ह्यभिनयं प्रति ।
नोक्ता येऽपि तु तेऽप्यत्र लोकात् ग्राह्यास्तु पण्डितैः ॥ ३०४
यानि वाच्यैस्तु न ब्रूयात् तानि गीतैरुदाहरेत् ।
न तैरेव हि वाक्यार्थैरथ प्राक्केवलाश्रयः ॥ ३०५
श्रव्यं श्रवणयोगेन दृश्यं दृष्टिविचारणैः ।
आत्मस्थं वा परस्थं वा मध्यस्थं च विनिर्दिशेत् ॥ ३०६
एवमन्येष्वपि तथा नानाकार्यार्थदर्शनात् ।
विनावाचा[1]नुभावो वा विज्ञेयोऽर्थवशाद्बुधैः ॥ ३०७
धैर्यलीलाङ्गहारः स्यात् पुरुषाणां तु चेष्टितम् ।
हस्तपादाङ्गसञ्चारः स स्त्रीणां ललितो भवेत् ।
नराणां प्रमदानां च भावाभिनयनं पृथक् ॥ ३०८
लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् ।
लोकाध्यात्मपदार्थेषु प्रायो नाट्यं व्यवस्थितम् ॥ ३०९
देवतानामृषीणां च राज्ञां लोकस्य चैव हि
पूर्ववृत्तानुचरितं नाट्यमित्यभिधीयते ॥ ३१०
एवं लोकस्य या वार्त्ता नानावस्थान्तरात्मिका ।
सा [2]नाट्ये संविधातव्या नाट्यहेतोः प्रयोक्तृभिः ॥ ३११
यानि शास्त्राणि ये धर्मा यानि शिल्पानि याः क्रियाः ।
लोकधर्मप्रवृत्तानि नाट्यमित्यभिधीयते ॥ ३१२
न च शक्यं हि लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
शास्त्रेण नियमं कर्तुं नानाचेष्टाविधिं प्रति ॥ ३१३
नानाशीलाः प्रकृतयः शीले नाट्यं प्रतिष्ठितम् ।
तस्माल्लोकप्रमाणं हि नाट्यं ज्ञेयं प्रयोक्तृभिः ॥ ३१४
नाट्यप्रकाराः कथिता मयैते
विज्ञाय सम्यङ् मनुजैः प्रयोज्याः ।
नाट्यस्य तत्त्वानुगतः प्रयोगः
[3]संमानमग्र्यं लभते हि रङ्गे ॥ ३१५

॥ इति सामान्याभिनयः ॥

*

1 AB वोचा° । 2 ABC साम्नाट्ये । 3 ABC समान° ।

[चित्राभिनयः ।]

अङ्गाद्यभिनयस्यैव यो विशेषः क्वचित् क्वचित् ।
अनुक्तमुच्यते चित्रः स चित्राभिनयः स्मृतः ॥ ३१६
रम्भोर्वशी[1] प्रभृतिभिर्दिव्यं नाट्यं प्रवर्तितम् ।
तथैव मानुषे लोके पार्थिवानां गृहेषु च ॥ ३१७
सङ्गीतपरिक्लेशा नित्यं प्रमदाजनस्य गुणहेतुः ।
यन्मधुरकर्कशत्वं भजते नाट्यं प्रयोगेण ॥ ३१८

॥ इति चित्राभिनयः ॥

*

[आहार्याभिनयः ।]

यतोऽलंकार्यशेषत्वमलङ्कारस्य वर्ण्यते ।
आहार्याभिनयस्यातो नाङ्गिकात् पृथगर्थता ॥ ३१९
शेषत्वाद्गुणतापत्तेर्न प्रधानत्वमिष्यते ।
गुणः प्रकृत्यङ्गमतोऽन्याङ्गता संमता [2]सताम् ॥ ३२०
अन्याङ्गमप्रधानं स्यादतो न वसकः(? रसकः)स्वतः ।
अङ्गेषु मुकुटादीनां शब्देषु यमकादिवत् ॥ ३२१
न संस्कार-विशेषत्वात् पृथक्त्वं कस्यचिन्मतम् ।
सालङ्कारैर्वचोगुम्फैरङ्गैर्भूषाविभूषितैः ॥ ३२२
विभागादेरभिव्यक्ते रसाभिव्यञ्जकत्वतः ।
भूषणानां न भूष्येभ्यो गणना पृथगीप्सिता ॥ ३२३
यथा धुतादिके मूर्ध्नि क्रियाभेदाद्भवेद्भिदा ।
एवं भूषाविभेदेन भेद इत्येव सुन्दरम् ॥ ३२४
उपाङ्गता वाऽमीषां स्यात् पृथग्वृत्तेरभावतः ।
तथा हि त्रितये ह्यस्मिन् चतस्रो वृत्तयः स्मृताः ॥ ३२५

*

[भारत्यादिवृत्तयः ।]

भारती सात्त्वती चैव कैशिक्यारभटीति च ।
[3]वर्तन्तेऽभिनया यस्मादास्वासां वृत्तिता ततः ॥ ३२६
भारत्यभ्यर्हिता यत्र वृत्तिः[5] सा भारती मता ।
वृत्तिः सा कैशिकी या तु कैश्यवत् सौक्ष्म्यशालिनी ॥ ३२७

---

1 AB °वसी; C रंभावेसी । 2 BC गताम् । 3 ABC वर्तते । 4 BC वृत्ति ।

अभिनेयपरां शोभां काञ्चित् संपादयन्त्यपि ।
आरं स्यात् [1]शातदन्तस्य योगाद्योधा भटाः स्मृताः ॥ ३२८
तद्वृत्तिरिव या वृत्तिर्भवेदारभटी तु सा ।
ऋग्यजुःसामवेदेभ्यो वेदाच्चाथर्वणात्तथा ॥ ३२९
क्रमाज्जाताश्चतस्रस्तु नानाभेदोपबृंहिताः ।
भारत्यां वाचिकाः सर्वे वर्तन्तेऽभिनया इह ॥ ३३०
तिसृष्वन्यासु वर्तन्तेऽभिनया आङ्गिका पुनः ।
वृत्ति(? त्त्य)भावादभिनयो नाहार्योऽत्रार्यसंमतः[2] ॥ ३३१

*

[सात्त्विकभावपरीक्षा ।]

अतः [3]कायमनोवाग्भिर्निमित्तैस्त्रिविधैरिह ।
निर्वृत्तत्वात् त्रिधैते स्युरिति केचन मन्वते ॥ ३३२
विचारस्यासहत्वेन नैतद्युक्ततरं यतः ।
सात्त्विका आङ्गिकेष्वेव पर्यवस्यन्ति तत्त्वतः ॥ ३३३
नटस्यातत्स्वरूपस्य किं तादात्म्यमतो न हि ।
स्तम्भादीनां सात्त्विकत्वं केवलानामिहोदितम् ॥ ३३४
अथ प्रयत्ननिर्वृत्त्याः सात्त्विकाश्चेद्भवन्मते ।
मतमेवं वचोभङ्गिरङ्गीकारोचिता त्विह ॥ ३३५
एत एव प्रयत्नेन निर्वृत्त्याः सर्व एव वा ।
स्तम्भाद्या उत रत्यादिस्थायिनो व्यभिचारिणः ॥ ३३६
तथा हि विवदन्तेऽत्र सत्त्वे प्रावादुका यथा ।
विकाराद्वायुसंरोधनिर्मितात् सात्त्विकाज्ज(? ज्ञ)गुः ॥ ३३७
भट्टोद्भटादयः [4]श्वासोच्छ्वासादेर्वासनामयात् ।
चिदंशो वायुसंरोधा[5]त्सिद्धसंवेद्यलक्षणः ॥ ३३८
चिराचिरस्वरूपेण सत्त्वमित्यभिधीयते ।
शिक्षाभ्यासाच्चिरतरमङ्गाद्यैर्नाट्यकर्मणि ॥ ३३९
वासनाभिनयैर्नैतद्भट्टलोल्लटसंमते ।
यथा तदानीं नो कर्ता तादात्म्यं नैव किश्चन ॥ ३४०
भावः स्वसुखदुःखाभ्यां के भेदा वेशकश्चन(?) ॥ ३४१

1 BC शात्रदंतस्य; A शास्त्रत्रदंतस्य । 2 BC नयाहार्योत्रार्यसमंततः । 3 BC कामयतो । 4 ABC स्वासोत्स्वासो । 5 ABC °धा सिधा° ।

लयतालावसानस्य विषयेष्ववधानतः ।
प्रणीतस्य प्रयोगत्वासंभवात् लौकिकाः स्मृताः ॥ ३४२
स्तम्भादीनां तु बाह्यानां हेतवो नान्तराः क्वचित् ।
अतः सविषयत्वं नो सहमाना इमे स्फुटम् ॥ ३४३
रत्यादय इव स्वीयबलेन स्वकार्यगम् ।
प्रयत्नाद्यं [1]विरुध्याथो रत्यादि समनन्तरम् ॥ ३४४
उद्भूतास्त इव ग्राह्यगुणशून्यतयात्र तु ।
उच्यन्ते सात्त्विका भ्रान्तचित्तवृत्तिविशेषिकाः ॥ ३४५
बाह्यवस्तुविशेषाभिमुख्यापेक्षाविनाकृतम् ।
रत्यादिरूपसापेक्षमन्तःकरणमुच्यते ॥ ३४६
शुद्धं सत् तन्मते सत्त्वं केषाञ्चन मते पुनः ।
बीजस्थानीयमव्यक्तरूपं सत्त्वमुदीरितम् ॥ ३४७
मनसा सहितं [2]चास्य तत्त्वमेव क्वचिन्मते ।
सत्त्वशब्दाभिधेया(?यं)यत्स्थानं तत् सात्त्विकं मतम् ॥ ३४८
बाह्यार्थविषयक्रोधादिकानां परिणामतः ।
तदीयपरिपाकस्य परिपोषस्वरूपतः ॥ ३४९
स्तम्भादि कारयन्ति ये रतिक्रोधादयो यतः ।
उद्भासन्ते सविषया अतस्तद्व्यतिरेकिणः ॥ ३५०
ग्लान्यालस्यश्रमाद्यासु(?स्तु) विषया भावतो यदि ।
यथा ये बाह्यहेतुकाः सन्तो वैवर्ण्येनोपलक्षिताः ॥ ३५१
सात्त्विकान्तःपातित्वेन गणिताः पूर्वसूरिभिः ।
अस्रादयो बाह्यधूमशीतादिकनिमित्तकाः ॥ ३५२
व्यजनग्रहणाद्येनाभिनयेनोपलक्षिताः ।
असात्त्विकेऽपि तन्मध्ये गणिता भवभूतिना ॥ ३५३
कथं वा रतिनिर्वेदादिकमत्राभिनीयते ।
नटेन निरपेक्षेण मानसव्याप्तेरिह ॥ ३५४
इत्यादिकं तथा स्तम्भादिकं तस्मात्समं मतम् ।
नैवं[3] स्वभोजनादौ तु जनो व्यग्रमना अपि ॥ ३५५
सकृन्मनः प्रयुज्यापि कुर्वन् चङ्क्रमणादिकम् ।
दृश्यतेऽन्यमना नैव स्तम्भादिजनने क्षमः ॥ ३५६

1 BC विरुध्यायो । 2 ABC चास्त । 3 BC नैव ।

तस्मादनन्यमनसो जायन्ते ते नु सात्त्विकाः ।
स्तम्भादीनां न चैवं स्यात् समाधानं तु मानसम् ॥ ३५७
हेतुः समानकालीनोऽष्टको[1]दयनिमित्ततः ।
तद्बाष्पं जनयेयु[2]र्ये नटबुद्ध्यवसायकाः ॥ ३५८
ते स्युर्नटगतानां तु बाह्यबाष्पादिहेतवः ।
एवं ते सात्त्विकाः सत्त्वेनाहृताः संसदि स्फुटम् ॥ ३५९
वाक्यगाथादिभिर्गम्या नैवमवघटेत हि ।
एवं ते ह्यभिनीयेरन्नट(? टा) नेत्रजलादिभिः ॥ ३६०
नैवं नटानामन्योन्यं प्रसिद्धा एव तेन तत् ।
यतोऽस्यैवं प्रसिद्धाभिधानेऽस्य [3]क्वचित् तत्कृतेः ॥ ३६१
शिष्यानौपयिका तत्र किं फलं वद तत्त्ववित् ।
नैवं तथाविधे बुद्ध्यवसायेऽष्टकस्य तु ॥ ३६२
मानसैकाग्र्यहेतुत्वे यौगपद्योदयान्वितः ।
बाह्यबाष्पाष्टकस्यास्य यौगपद्यादयोऽपि च ।
तत्र सामग्र्यन्तरं चेत् किमवान्तरकल्पनैः ॥ ३६३
सुलयमनुसरामि स्थानकं स्वीकरोमि
  स्फुरितमनुभवामि स्थायिरूपं सलीलम् ।
परमिह रचयामि प्रीतिदृष्टिं च कान्ताम्
  भ्रुवमुपरि नयाम्युत्फुल्लविस्फारतारम् ॥ ३६४
इत्यादयोऽध्यवसाया गण्या नटगता न हि ।
अन्तर्भावो न सर्वेषामुक्तेष्वेवावकल्पते ॥ ३६५
न चातिव्यग्रमनसा तारकाया विलोलनम् ।
शक्यक्रियां(? यं) न वा योग्याभ्यासशिक्षात्र कारणम् ॥ ३६६
स्तम्भादावपि सा तुल्ययोगक्षेमात्र दृश्यते ।
एकाग्र्यबुद्ध्यवसायशून्ये नाट्ये नटेन च ॥ ३६७
किञ्चिदप्यधुना कर्तुमशक्यं विद्यते क्वचित् ।
नटस्याध्यवसायानां लौकिकेनानुकारिणा ॥ ३६८
निर्वेदादिभाववर्गगणने किं फलं वद ।
बाह्योऽपि दृश्यते स्तम्भो भयहर्षादिकैरपि ॥ ३६९
व्यजनग्रहणाच्चापि स्वेदाभिनयने क्वचित् ।
मन्दसत्त्वे नटेऽर्कादितापात् स्वेदः प्रतीयते ॥ ३७०

1 ABC ष्टकादयनिमित्ततः । 2 ABC जनयेयं । 3 ABC कचितत् ।

नैतद्दरिद्रगृहिणीविवाहोत्सवतुल्यताम् ।
अवश्यकरणीयत्वादारोहतीति भवद्वचः ॥ ३७१
नैवमेवंविधस्यापि नटना नोपपद्यते ।
तदान्यपात्रमध्ये किं क्रियते व्यजनाग्रहः ॥ ३७२
केनचित्त्वथवा कार्यः स्वयं सामाजिकेन किम् ।
अन्येषु सात्त्विकेष्वेवमेव दूषणकल्पना ॥ ३७३
तेषां महानुभावानां सात्त्विकानां हृदः स्फुटम् ।
कलुषीकरणाज्जातः शङ्कुशङ्कासमागतः ॥ ३७४
विशीर्णफलदानोक्तफलः फलतु किं फलः ।
सत्त्वाख्येन प्रयत्नेनाभिनीयन्ते तु तेऽत्र ते ॥ ३७५
भावाः स्युः सात्त्विकास्तस्मात् किं तथा ये तथा न हि ।
बाष्पगद्गदमुख्याः स्युस्तथा [1]स्वेदोद्गमादयः ॥ ३७६
प्रयत्नेनाभिनिर्वर्त्यं हेतुश्चेत् सात्त्विके भवेत् ।
तत्पुंप्रयत्ननिर्वर्त्यपद्मकोशादिभिर्भवेत् ॥ ३७७
वर्षधारादिकेतेऽभिनेये सात्त्विकता न किम् ।
अथ चेद्व्यतिरेकस्ते तेभ्यस्तेषामिमे यथा ॥ ३७८
रत्यादयश्चित्तवृत्तिनिर्वेदात् पूर्वमेव तु ।
निर्वेदनं [2]प्रकुर्वन्ति ततः प्राणमथान्तरम् ॥ ३७९
तन्मांस(?)विश्वरूपाभ्यां सत्त्वं कलुषयत्यपि ।
अन्तःकरणसत्त्वस्य वायुराश्रयतां गतः ॥ ३८०
क्रोधाद्या अपि दृश्यन्ते विकाराः प्राणसंभवाः ।
प्राणसूत्रपरिप्रोते संविदभ्यासचित्रिते ॥ ३८१
विकारो जायते देहे तत्र चित्प्रत्ययेन च ।
रत्यादिरप्रसरणस्वभावः प्राणभूमिकाम् ॥ ३८२
अनधिष्ठाय सहसाऽस्तमेति स यदा पुनः ।
परामर्शाल्लक्षणीयामवधानधुरं व्रजेत् ॥ ३८३
तदा स प्रसरत्येव प्राणभूमौ तथाविधः ।
तामसत्वान्न नैर्मल्यसाधुतोपचितः परम् ॥ ३८४
सत्त्वमित्युच्यते सांख्यप्रसिद्धं सत्त्वमित्युत ।
न तस्य प्राणदेहे च विकारः संभवेत् क्वचित् ॥ ३८५

1 ABC स्वेद । 2 A विकु° ।

धूमविधूसरवदनप्रकृतिविजिह्मस्वभावस्य ।
नैते लोके दृष्टाः कचिदपि सत्त्वे विकारास्तु ॥ ३८६

तथा च राहुलः–

सत्त्वं रजस्तम इति प्रथिता गुणा ये
चित्तं तदात्मकमिहोपदिशन्ति सन्तः ।
सत्त्वोत्कटं मनसि ये प्रभवन्ति भावा–
स्ते सात्त्विका निगदिता मुनिभिः पुराणैः ॥ ३८७

इति–

लाघवे च प्रकाशे च तारतम्यस्य संभवात् ।
दृष्टः क्रोधभयादौ च तथा सत्त्वस्य संभवः ॥ ३८८
तत्प्राणभूम्यां प्रसृतप्राणसंवेदवृत्तयः ।
देहेनैव तावदमी संवित्स्वीकारवर्जिताः ॥ ३८९
[1]बाह्याख्यजडरूपेण भौतिकेन तथा पुनः ।
इन्द्रजालादिविशदविभावेन तथैव च ॥ ३९०
रत्यादिकेनातिचर्व्यमाणगोचरतां गतैः ।
अनुभावैर्गम्यमाना भजन्ते भावशब्दताम् ॥ ३९१
ते च सत्त्वे प्राणमये भवत्वात् सात्त्विका मताः ।
ते सत्त्वेन चित्तवृत्ते(?त्तौ) चर्व्यमाणा विधानतः ॥ ३९२
निर्वृत्ता इति विज्ञेयाः सात्त्विकास्तद्यथोच्यते ।
मनःप्रभवतो वस्तु सत्त्वं प्राणात्मकं मतम् ॥ ३९३
सीदत्यस्मिन् मनः सत्त्वोत्कर्षात् साधुत्वतोऽपि च ।
केचित् सत्त्वेन संजल्पस्वभावां शब्दभावनाम् ॥ ३९४
आहुः [2]सूक्ष्मवासनादिस्वरूपेण व्यवस्थिताम् ।
तथा चिरतराभ्यासभावनाया विकल्पतः ॥ ३९५
संजल्पतोद्भिन्नवृत्तेः सनाम्नो मनसोद्भवः ।
यस्मिन् तत् सत्त्वमित्युक्तं ननु किं केवलो(? ले)भवेत् ॥ ३९६
प्राणभूते सत्त्वरूपे तत्र को हेतुरुच्यते ।
तस्मात् सत्त्वाद्धेतुभूतादाहितं यत्समन्ततः ॥ ३९७
मनः[3] संवेदनं तस्य संबन्धान्मनसोऽपि च ।
समाधानाच्च रत्यादि विषयस्य तु *** ॥ ३९८

---

1 BC drop बा । 2 ABC शूक्ष्म । 3 BC मनसं° ।

चर्व्यमाणादिरूपेणोत्पद्यते प्रकृतित्वतः ।
स्तम्भाद्यैरान्तरैः पूर्वमभिन्नक्रमरूपधृक् ॥ ३९९
एवमुक्तात् त्रिःप्रकारात् सत्त्वादुत्पाद्यतेऽत्र यः ।
स सात्त्विक इति ख्यात इति चेदुच्यते त्वया ॥ ४००
तर्ह्येवं रतिनिर्वेदप्रमुखा अपि सात्त्विकाः ।
स्थानभेदोपसंक्रान्तावस्थान्तरयुजो न [1]किम् ॥ ४०१
एवमेकोनपञ्चाशज्जाता भावास्तु सात्त्विकाः ।
अत्राहुः केचिदाचार्याः स्थायिषु व्यभिचारिणः ॥ ४०२
पर्यवस्यन्ति तेषां च रूपं प्रसरणाद्बहिः ।
अन्तोष्टारेचन(?)स्तम्भादिके दुर्योजमेव तत् ॥ ४०३
तथा ह्येते प्रोततया धराद्यं भूतपञ्चकम् ।
प्रपञ्चयति प्राणोऽथ स्वतन्त्रश्चेष्टतेऽपि च ॥ ४०४
तत्रावलम्बते प्राणं धराद्यं भूतपञ्चकम् ।
प्राणो यां यां चित्तवृत्तिं कुरुते स्वात्मनि [2]श्रिताम् ॥ ४०५
संपादयति तां तां स स्तम्भस्वेदादिभावताम् ।
तथा ह्यत्र क्रोधभयहर्षादिविहिता अमी ॥ ४०६
देहक्रियाप्रयत्नेच्छादय एकस्वरूपिणः ।
चित्तवृत्तिस्तम्भमात्राकारा स्युर्व्यभिचारिणः ॥ ४०७
अमीभिरेव स्तम्भाद्यैर्नाट्ये संगृह्य वर्णिताः ।
यथोद्वेगा वैमनस्यं बाह्यवैवर्ण्यहेतुके ॥ ४०८
तस्मात् सर्वचित्तवृत्तिकलापोऽष्टक एव यत् ।
अन्तर्भूतः स चैवात्रानुभावेष्वत एव सः ॥ ४०९
तदुक्तौ संगृहीतः स्यादन्यत्राप्येवमूह्यताम् ।
जिह्मभागप्रधाने तु प्राणे संक्रान्त उच्यते ॥ ४१०
चित्तवृत्तिगणो बाह्यस्तैजसस्तु तथा पुनः ।
क्रोध इत्युच्यते तीव्रातीव्रत्वेनोपलक्षितः ॥ ४११
आकाशस्यानुग्रहे तु प्रलयः परिकीर्तितः ।
न तत्पूर्वं ततः पश्चात् स्वेदवारीति केचन ॥ ४१२
तामवस्थां परिप्राप्तोऽ[3]थावहित्थादिभावकः ।
बहिर्विकारपर्यन्तप्राप्तोऽत्र परिदृश्यते ॥ ४१३

1 BC कि । 2 ABC° निश्रिताम् । 3 ABC थबहि ।

तदत्रान्तर्मनोरूपत्वाख्याभावाच्च बाह्यतः ।
भौतिकाख्यविकारान्ता चेतोवृत्तिरिह स्फुटा ॥ ४१४
प्राणभूमौ तु [1]विश्रान्ता दर्शिता स्थूलदर्शिना ।
अत्राष्टत्वं स्थूलदृशा वस्तुतोऽनन्तता मता ॥ ४१५
र(?अ)त्युच्चलतया श्वासोच्छ्वासरूपतयान्यकः ।
क्रोधोऽन्तरा समुदितो बाह्योऽन्यः स्वेदहेतुकः ॥ ४१६
आनन्दोऽप्येवमेवेष्टः[2] शोकजे तु गलग्रहे ।
अन्योन्य एव तेनाष्टाविति स्थूलदृशां दृशा ॥ ४१७
देहात्ममानिनां तेन नीचानां झटिति स्फुरन् ।
उत्तमानां तु देहादिव्यतिरिक्तात्ममानिनाम् ॥ ४१८
विवेकशालिनां[3] चान्तर्न बहिर्दृश्यते क्वचित् ।
योगिनां[4] सर्वथा नेति तैर्यथैवोपदिश्यते ॥ ४१९
अतो भूतानुग्रहाच्चाष्टधा प्राणाद्यनुग्रहात् ।
स मनोज्वलनाद् [5]ध्यानाद् रोमहर्षः प्रजायते ॥ ४२०
अयमर्थो मया यावदुपयोगं प्रदर्शितः ।
आगमस्यानुरोधेन लोकाभिप्रायवेदिना ॥ ४२१
नाट्याभिप्रायमाश्रित्य सात्त्विकत्वं निरूप्यते ।
अत्र प्रयत्ननिर्वर्त्याः सात्त्विका इति संमतम् ॥ ४२२
रोमाञ्चादि यथा बाह्यमान्तरं स्यात्तथा[6] नटैः ।
कर्तुं न शक्यते व्यग्रैः शिक्षामात्रोपजीविभिः ॥ ४२३
अलमेतेन [7]चेन्नैवं लोकानुकृतिरूपकम् ।
सात्त्विकं तद्भवा भावाः[8] सात्त्विका आन्तरा मताः ॥ ४२४
प्राणाद्यनुग्रहात्ते स्युरितराङ्गं तथेप्सिताः ।
ननु बाष्पादि यद्बाह्यं [9]नाट्यमस्तु तदत्र किम् ॥ ४२५
तेनान्तरालिकेन स्यात् कृत्वे(?त्ये)नेति तथा न हि ।
इदमत्र तु तात्पर्यं ये भावा नाट्यगामिनः ॥ ४२६
कुर्वन्ति सुखदुःखे ये तथा येऽभिनयन्ति ते ।
बाह्यादयस्तु ते कार्या यथा नो शङ्कितास्तथा ॥ ४२७
बाह्यधूमादिहेतूत्था दुःखजैरान्तरालिकैः ।
बाष्पादिभिस्तुल्यरूपा नाट्य[10]धर्मिप्रयोजिताः ॥ ४२८

---

1 ABC विश्राता । 2 ABC मेवष्टः । 3 ABC °शालिनी । 4 C योनिनां । 5 ABC नात° । 6 ABC त्तटा । 7 ABC अलमेते च तेन्नैवं । 8 ABC °भावा । 9 BC नामस्तु । 10 ABC धर्मी ।

निर्णीयन्ते प्रेक्षकैश्च सत्यत्वेनान्तरालि[1]काः ।
रामादिकाभिनेयानां प्रतीतिप्रत्ययस्य च ॥ ४२९
विरोधित्वसमत्वाभ्यां [2]श्रुतत्वेनोपरञ्जिताः ।
नटज्ञानविरोधेन चैवं रूपद्वयस्य च ॥ ४३०
अनुसारेणानुगाम्ये[3] रूपं भातीति सांप्रतम् ।
अत्र दुःखमदुःखेन सुखं चासुखितेन च ॥ ४३१
नाभिनेतुं क्षमं तस्माद्धितयाभिस्युतेन च ।
द्रष्टव्यावश्रुरोमाञ्चाविति सात्त्विकनिर्णयः ॥ ४३२
अत्र प्रयत्ननिर्वर्त्ये समाने भाववर्गगे ।
अतिप्रसक्तिसुखेषु दोषरूपस्थितेषु च ॥ ४३३
सात्त्विका आङ्गिकेष्वेव युज्यन्त इति सांप्रतम् ।
[4]तस्मान्मुख्यावभिनयौ वागङ्गप्रभवौ मतौ ॥ ४३४
अर्थप्रतीत्युपायत्वाद्वाचिकोऽपि हि तद्गुणः ।
मुख्यत्वमाङ्गिकस्यैव यदारादुपकारकः ॥ ४३५
वाचिकोऽपि भवेदर्थप्रतीतिद्वारतोऽस्य च ।
एवं नानामुनि[5]मतोऽभिनयोऽत्र विवेचितः ॥ ४३६
चतुर्धा च त्रिधा द्वेधैकधा[6] सत्येवमप्ययम् ।
चतुर्विधो भुवो भर्त्रा लक्ष्यते लक्ष्मविन्मुदे ॥ ४३७
शाखानृत्ताङ्कुरोपाधिभेदात्तत्राङ्गिक[7]स्त्रिधा ।
वर्तनाः करयोः शाखास्तत्र वैचित्र्यचित्रिताः ॥ ४३८
अङ्गोपाङ्ग[8]चयैस्तत्र स्थानकैरुपबृंहितैः ।
करणैरङ्गहारैश्च [9]निर्वृत्तं नृत्तमुच्यते ॥ ४३९
अङ्कुरोऽप्यङ्गव्यापारो दृष्टिप्राधान्यमाश्रितः ।
भूतवाक्यार्थविषयश्चित्तवृत्त्यर्पणक्षमः ॥[10] ४४०
स एव [11]सूचीसंज्ञः स्याद्भाविवाक्यार्थसूचनात् ।
आरभटी सात्त्वती च कैशिकीति तिसृष्वपि ॥ ४४१
शाखा चैवाङ्कुरो [12]नृत्तं वर्तन्तेऽत्र यथाक्रमात् ।
देशकालवयोवस्थावेषभूषणशक्तितः ॥ ४४२
भाव्यते तद्गतो भेदो भावकैरञ्जसा स्वतः ।
रसाभिव्यक्तिपर्यन्तो वृत्ति[13]त्रितयवाचिकम् ॥ ४४३

1 ABC लिकः । 2 ABC शुत्वत्वे° । 3 ABC नुगांम्ये । 4 ABC °न्मुखाव° । 5 ABC मते । 6 ABC द्वेधौकधा । 7 BC कत्रिधा । 8 BC कयैस्तत्र । 9 BC निवृत्त । 10 BC °र्पणाक्ष° । 11 ABC सूचात् । 12 ABC नृत्यं । 13 BC वृतयवाचिकम् ।

[1]संस्मृतो नृत्यशब्देनाङ्गिकोऽप्यत्राभिधीयते ।
लक्षणां वृत्तिमाश्रित्य नाट्यश[2]ब्दोऽपि वर्तते ॥ ४४४
नृत्याभिधेऽङ्गाभिनये [3]प्रोक्तं पूर्वमिदं मया ।
नृतेः क्यप्प्रत्यये नृत्यशब्दः कर्मविवक्षया ॥ ४४५
भावोपसर्जनो यत्र रसो मुख्यः प्रकाशते ।
तन्नाट्यपूर्वकं नृत्यं मार्गनृत्यं तदुच्यते ॥ ४४६
रसोपसर्जनीभूतो यत्र भावः प्रकाशते ।
मार्गो भावाभिधस्तस्मान्मृग्यतेऽत्र रसो यतः ॥ ४४७
नाट्यमार्गोपाधिभिन्नं द्विधा नृत्यमुदीरितम् ।
नृतेः क्तप्रत्यये रूपं देशीनृत्तमिहोदितम् ॥ ४४८
नन्वत्र प्रत्ययैकार्थे मार्गदेशीति का भिदा ।
उच्यतेऽत्र तदैक्येऽपि यो यत्र विनियुज्यते ॥ ४४९
विवक्षावशतो ब्रूते स तमर्थमिति स्थितम् ।
पङ्कजत्वे समानेऽपि लोके पद्मे तदीरितम् ॥ ४५०
विवक्षा चात्र शोभायां हस्ते हस्तैकदेशवत् ।
नृत्ये नृत्यैकदेशेऽपि नृत्यशब्दाद् द्वयोर्ग्रहः ॥ ४५१
नाट्यधर्म(? र्मी)लोकधर्मीत्येवं रूपविशेषणात् ।
इति कर्तव्यता तस्य द्विविधा परिकीर्तिता ॥ ४५२
नाट्यधर्मी द्विधा तत्र शुद्धां नाट्योपयोगिनीम् ।
आश्रित्य कैशिकीवृत्तिं करोत्यावेष्टितादिभिः ॥ ४५३
चतुर्भिः करणैः शोभां प्रथमा सा भवेदियम् ।
अंशेनैवोपजीवन्ती [4]लोकमत्या प्रवर्त्तते ॥ ४५४
चार्यापविद्धया हस्तेनार्धचन्द्रेण यो भवेत् ।
निःकाशने प्रयोगोऽत्र न शास्त्रादेव गम्यते ॥ ४५५
न लोकादेककादेव तत्राज्ञानादनादरात् ।
किं तु द्वितयसंसर्गाद्दिदृक्षाऽस्मिन् प्रजायते ॥ ४५६
लोकधर्मी द्विधा ज्ञेया चित्तवृत्त्यर्पिकैकिका ।
निर्वेदादेश्चित्तवृत्तेर्ज्ञानदृष्ट्यादयो यथा ॥ ४५७
अन्या स्याद्बाह्यवस्तूनां निरूपणपरायणा ।
बाह्यस्य कमलादेस्तु पद्मकोशादयो यथा ॥ ४५८
नाट्यं मार्गं च देशीयमुत्तमं मध्यमं तथा ।

---

1 BC संसृतो । 2 ABC शब्दापि । 3 ABC प्रोक्त । 4 ABC लोमकन्या ।

अधमं क्रमतो ज्ञेयं नृत्यत्रितयमुत्तमम् ।
लास्यताण्डवभेदेन त्रयमेतद् द्विधा मतम् ॥ ४५९
ललनाललितैरङ्गरचनोपचितैः शुभैः ।
प्रयोगैः सुकुमारैर्यत् साधितं लास्यमत्र तत् ॥ ४६०
लासः स्त्रीपुंसयोर्भावस्तत्रार्हीये तु तद्धिते ।
साधावस्ये(? र्थे) लास्यशब्दः कामोल्लासनहेतुकः ॥ ४६१
मृद्वङ्गहारकरणचारीचरणकोमलः ।
ताण्डवं तद्भवेद्यत्तु प्राधान्येन प्रवर्तितम् ॥ ४६२
विषमं विकटं लघ्वित्यत्र तद्विषमं मतम् ।
यदभ्यासवशाद्रज्जुभ्रमणादि प्रदर्श्यते ॥ ४६३
विरूपवेषावयवव्यापारं विकटं मतम् ।
करणैरञ्चिताद्यैर्यत् प्रयुक्तं तद्भवेल्लघु ॥ ४६४
सङ्कीर्णं तद्भवेन्नृत्यं यदेतत्त्रयसङ्करात् ।
सर्वेष्वभिनयेष्वत्र व्यापारैराङ्गिकैर्यतः ॥ ४६५
उत्पद्यन्ते नृत्यभेदाः सप्रपञ्चा अनेकशः ।
अतः प्रयत्नतः सर्वान् तानहं वच्मि तत्त्वतः ॥ ४६६
अत्राङ्गाभिनयः साक्षादङ्गविज्ञानपूर्वकः ।
अतोऽङ्गनिचयं वक्ष्ये विस्तराल्लक्ष्मपूर्वकम् ॥ ४६७
यद्यप्यत्र प्रधानत्वे नृत्ये चरणकर्मणः ।
चरणादेः प्रकथनं युज्यतेऽङ्गनिरूपणे ॥ ४६८
तथापि शिरसोऽङ्गानां प्राधान्यादधिकारतः ।
शास्त्रस्यास्य मनुष्यस्य शिरःप्रभृतिवर्णनम् ॥ ४६९
यतो मौलेस्तु मनुजा वर्ण्याश्चर[ण]तः सुराः ।
इति शिष्टाचारमूलं मौलितोऽङ्गनिरूपणम् ॥ ४७०
एवं शिष्टानुरोधेन यद्यप्यत्रोपवर्णितम् ।
शिरःप्रभृतिकाङ्गानां लक्षणं संग्रहस्तथा ॥ ४७१
तथापि नृत्ये चार्यादौ[2] मुख्यत्वाच्चरणस्य च ।
तद्धेतुकत्वप्राधान्यादन्यस्य[3] चरणादितः ॥ ४७२
तत्राङ्गानि शिरो हस्तौ वक्षः पार्श्वे कटीतटम् ।
पादाविति षडुक्तानि [4]भरताचार्यसंमते ॥ ४७३
समं धुतं च विधुतमाधूतमवधूतकम् ।
कम्पिताकम्पितोत्क्षिप्ताधोगतानि च लोलितम् ॥ ४७४

1 ABC कामल्ला° । 2 ABC चार्यादे । 3 ABC °न्यस्ये । 4 A भरचा° ।

निहञ्चितं परावृत्तं परिवाहितमञ्चितम् ।
एवं स्युः शिरसो भेदाः समाने च चतुर्दश ॥ ४७५
समं स्वभावाभिनये स्वभावावस्थितं मतम् ।
[1]इदं पूजाजपध्यानस्वामिसेवादिषु स्मृतम् ॥ ४७६

॥ इति समम् ॥ १ ॥

*

क्रमेण तिर्यग्नमितं शनैरुक्तं धुतं शिरः ।
प्रतिषेधेऽनीप्सिते च विषादे विस्मये तथा ॥ ४७७
शून्यतायामनाश्वासे पार्श्वदेशावलोकने ।
अत्रैवान्तर्गतं ज्ञेयं शिरः पार्श्वविलोकितम् ॥ ४७८

॥ इति धुतम् ॥ २ ॥

*

धुतमेव भवेच्छीघ्रभ्रमणाद्विधुतं शिरः ।
शीतार्ते ज्वरिते भीते सद्यः पीतासवे भवेत् ॥ ४७९

॥ इति विधुतम् ॥ ३ ॥

*

तिर्यगूर्ध्वं सकृन्नीतमाधूतं कीर्तितं शिरः ।
गर्वेण भुजवीक्षायां पार्श्वस्थस्योर्ध्ववीक्षणे ॥ ४८०
शक्तोऽस्मीत्यभिमाने च तथाङ्गीकारकर्मणि ।
इहैवोद्वाहितं ज्ञेयमन्तर्भूतं विपश्चिता ॥ ४८१

॥ इत्याधूतम् ॥ ४ ॥

*

अधस्तात् सकृदानीतमवधूतमिहोच्यते ।
स्थित्यर्थे देशनिर्देशे संज्ञालापनयोरपि ।
उपविष्टाल्पनिद्रायामाह्वाने च प्रयुज्यते ॥ ४८२

॥ इत्यवधूतम् ॥ ५ ॥

*

ऊर्ध्वाधःकम्पनाच्छीघ्रं बहुशः कम्पितं मतम् ।
रोषे वितर्के विज्ञाने तर्जनेऽङ्गीकृतावपि ॥ ४८३
त्वरितप्रश्नवाक्ये च राज्ञा कम्पितमीरितम् ।
विब्बोकादिषु कान्तानामिदमाहुर्मनीषिणः ।
तिर्यग्नतोन्नतं ज्ञेयमत्रान्तर्भावमागतम् ॥ ४८४

॥ इति कम्पितम् ॥ ६ ॥

*

1 BC इद ।

द्विःप्रयुक्तं कम्पितं स्यात् शनैराकम्पितं शिरः ।
पुरस्थवस्तुनिर्देशचित्तस्थार्थप्रकाशने ।
संज्ञायामुपदेशे च [1]प्रश्ने चावाहने तथा ॥ ४८५

॥ इत्याकम्पितम् ॥ ७ ॥

*

ऊर्ध्वाभिमुखमुत्क्षिप्तं मस्तकं विनियुज्यते ।
दर्शनेऽनुगवस्तूनां चन्द्रादिव्योमचारिणाम् ॥ ४८६
दिव्यास्त्राणां प्रयोगे च विचारेऽर्थस्य वेष्यते ।
इदमेवाल्पमुत्क्षिप्तमुद्वाहित[2]मितीतरे ॥ ४८७

॥ इत्युत्क्षिप्तम् ॥ ८ ॥

*

[3]अधोगतं स्यादन्वर्थं दुःखे लज्जाप्रणामयोः[4] ॥ ४८८

॥ इति अधोगतम् ॥ ९ ॥

लोलितं मन्दमन्दं स्यात् सर्वदिक्षु विलोलनात् ।
निद्रागदग्रहावेशमदमूर्च्छासु तन्मतम् ॥ ४८९

॥ इति लोलितम् ॥ १० ॥

*

उत्क्षिप्तांसं किञ्चिदिव तिर्यग्ग्रीवं निहञ्चितम् ।
एतद्विलासे विब्बोके ललिते किलकिञ्चिते ॥ ४९०
माने मोट्टायिते गर्वे स्तम्भे कुट्टमिते स्थिते ।
विलासो ललिता चेष्टा विशिष्टागमनादिका ॥ ४९१
विब्बोको वाञ्छितार्थस्य लाभे गर्वादनादरः ।
अङ्गानां सौकुमार्यं यल्ललितं तदुदाहृतम् ॥ ४९२
हर्षक्रोधाभिलाषादेः सांकर्यं किलकिञ्चितम् ।
मानः प्रणयजो रोषः प्रिये तज्ज्ञैरुदाहृतः ॥ ४९३
कान्तस्तुतिकथालापलीलाहेलादिदर्शने ।
तद्भावभावनं स्त्रीणामुक्तं मोट्टायितं स्फुटम् ॥ ४९४
अहंभावः स्मृतो गर्वः स्त्रीणामभ्यासमागमे ।
स्तम्भः पराङ्मुखीभावः प्रियेऽनुनयतत्परे ॥ ४९५
सौख्यानुभावेऽप्यधरस्तनकेशग्रहादिषु ।
बाह्यो दुःखानुभावो यः सोऽत्र कुट्टमितं मतः ॥ ४९६

---

1 ABC पृश्न । 2 ABC वाहिता° । 3 ABC अधोमतं । 4 ABC प्रमाणयोः ।
cf. °प्रणामयोः सं. र. अ. ७ श्लो. ७३ ।

स्वभावावस्थितं स्त्रीणां स्थितमुक्तं मनीषिभिः ।
अनेनैवोक्तपूर्वं तु शिरस्तिर्यग्नतोन्नतम् ॥ ४९७

॥ इति निहञ्चितम् ॥ ११ ॥

*

परावृत्तं तु तच्छीर्षं प्रत्यक्कृतमुखं तु तत् ।
परावृत्तानुकरणे पृष्ठतः प्रेक्षणेऽपि च ।
लज्जादिजनिते कार्यं [1]मुखापसरणेऽपि च ॥ ४९८

॥ इति परावृत्तम् ॥ १२ ॥

*

मस्तकं मण्डलाकारभ्रामितं परिवाहितम् ।
स्कन्धौ किञ्चिदिवाश्लिष्यदेतदारात्रिकं मतम् ॥ ४९९
हर्षेऽनुमोदने क्रोधे विचारे विस्मये स्मिते ।
लज्जाकृते तथा मौने प्रियानुकरणेऽपि च ।
कार्यमाहुरिदं तज्ज्ञाः पराभिप्रायवेदने ॥ ५००

॥ इति परिवाहितम् ॥ १३ ॥

*

पार्श्वतो विनतग्रीवं किञ्चिदञ्चितमुच्यते ।
व्याधौ मोहे च मूर्च्छायां चिन्तायां मदनिद्रयोः ।
स्कन्धानतमिहैव स्यादन्तभूतं शिरोऽन्तरम् ॥ ५०१

॥ इत्यञ्चितम् ॥ १४ ॥

॥ इति चतुर्दशविधं शिरः ॥

*

[अथ वेणीधम्मिल्लः ।]

वेणीकृतास्तथा मुक्ता बद्धाः[2] स्तब्धकचा मताः ।
मोटको जूटको वीरग्रन्थिर्द्धि[3]फलकस्तथा ॥ ५०२
नारिंगी चैव धम्मिल्ल[ः]कुन्तलः संनिवृन्तकः ।
[4]यावग्रन्थिः कुशग्रन्थिर्ब्रह्मग्रन्थिश्च गुम्फितः ।
मूलग्रन्थिस्तथा मध्यप्रान्तग्रन्थिस्तथैव च ॥ ५०३
इत्याद्यनेकशश्चैव ज्ञातव्याः संयताः कचाः ।
कुटिलो लम्बितस्तद्वदृजुर्वक्रस्तथाग्रगः ।
शिरोमध्यगतः कर्णोपरिगः सं(? गोऽसं)यतो भवेत् ॥ ५०४

॥ इति वेणीधम्मिलः परिपूर्णः ॥

॥ इति आङ्गिकनृत्यक्रमः ॥ २ ॥

*

1 BC °पि° । 2 ABC बद्धा । 3 ABC °ग्रन्थर्द्धि° । 4 ABC यावग्रन्थी-कुशग्रन्थी ।

अनेकार्थेषु शब्देषु संयोगाद्यैर्यथार्थता[1] ।
[2]आङ्गिकाभिनयेष्वेव प्रयोगादर्थता[3] तथा ।
सोऽपि प्रयोगो लभते लोकात् [4]स्वशास्त्रतोऽपि च ॥ ५०५
निश्चेतव्यास्ततश्चैते लोकशास्त्रानुसारतः ।
पताकस्त्रिपताकश्चार्धचन्द्रः कर्तरीमुखः ।
अरालमुष्टिशिखरकपित्थखटकामुखा[5]ः ॥ ५०६
शुकतुण्डश्च काङ्गूलपद्मकोशोऽलपल्लवः ।
सूचीमुखः सर्पशिराश्चतुरो मृगशीर्षकः ॥ ५०७
हंसास्यो हंसपक्षश्च भ्रमरो मुकुलस्तथा ।
ऊर्णनाभश्च संदंशस्ताम्रचूडः करः परः ॥ ५०८
चतुर्विंशतिरित्येते हस्तकाः स्युरसंयुताः ।
अभिनेयपरत्वेन क्वचित् स्युः संयुता अपि ॥ ५०९
उपधानः सिंहमुखः कदम्बश्च निकुञ्चकः ।
एतैः संमिलिता भूत्वा स्युरष्टाविंशतिश्च ते ॥ ५१०
अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कशः स्वस्तिकस्तथा ।
खेडका [6]वर्धमानाख्य उत्सङ्गो निषधस्तथा ॥ ५११
दोलः पुष्पपुटश्चैव तथा मकरसंज्ञकः ।
गजदन्तो बहित्थश्च वर्धमानस्तथैव च ।
त्रयोदशैते विज्ञेया संयुता हस्तका बुधैः ॥ ५१२
योगप्रदालिङ्गनाख्यौ करौ द्विशिखरस्तथा ।
कलापकः किरीटश्च चकषश्चाथ लेपनः ॥ ५१३
सप्तैते हस्तका सन्ति बृहद्देशीविदां मते ।
अष्टाचत्वारिंशदेते भवन्त्यभिनये कराः ॥ ५१४
चतुरस्रावथोद्वृत्तावन्यौ तलमुखाभिधौ ।
स्वस्तिकौ विप्रकीर्णाख्यावरालखटकामुखौ ॥ ५१५
आविद्ध[7]वक्रौ सूच्यास्यौ रेचितावर्धरेचितौ ।
तथार्थ(? र्ध)चतुरस्राख्यौ [8]हस्तावुत्तानवञ्चितौ ॥ ५१६
नितम्बौ पल्लवाख्यौ च केशबन्धाभिधौ करौ ।
लताख्यौ करहस्तौ च पक्षवञ्चितकाभिधौ ॥ ५१७

---

1 AC °र्थधाः; B धा । 2 A आगिकाभि°; BC आगिभि° । 3 ABC °धास्त° ।
4 ABC स्वंशा° । 5 BC मुखा । 6 BC वद्धमानाख्या । 7 ABC वक्त्रो । 8 ABC हत्वा ।

पक्षप्रद्योतकौ दण्डपक्षौ गरुडपक्षकौ ।
ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ पार्श्वमण्डलिनौ तथा ॥ ५१८
उरोमण्डलिनौ ताभ्यामुरःपार्श्वार्धमण्डलौ ।
मुष्टिकस्वस्तिकावन्यौ नलिनीपद्मकोशकौ ॥ ५१९
अलपद्मानुल्वणौ च वलितौ ललितौ तथा ।
वरदाभयदौ चेति द्वात्रिंशन्नृत्यहस्तकाः ॥ ५२०
लताख्यौ यौ करौ तौ तु नृत्याभिनयगोचरौ ।
संप्रदायाद्युक्तिबलाल्लोकाचात्र विशेषधीः ॥ ५२१
क्रमादशीतिरेवं स्युः सर्वे संभूय हस्तकाः ।

*

कुञ्चिताङ्गुष्ठको यत्र तर्जनीमूलमाश्रितः ॥ ५२२
ऋजुश्लिष्टाङ्गुलिर्ज्ञेयः पताकस्तालतः समः ।
राज्ञां प्रतापाभिनये प्रशंसागर्वयोरपि ॥ ५२३
प्रेरणायां प्रहारे च प्रोञ्छने प्रतिषेधने ।
छेदे प्रधाने गोप्यार्थे पुष्करादेश्च वादने ॥ ५२४
आदर्शे याचने श्लक्ष्णमर्दने तालिकादिके ।
स्पर्शे विभजने वस्तुनिर्देशेऽयं प्रयुज्यते ॥ ५२५
ज्वालाद्यूर्ध्वाभिनयने स्यादूर्ध्वप्रचलाङ्गुलिः ।
तथाविधोऽधोगच्छन् स्यात् धाराद्यभिनये करः ॥ ५२६
ऊर्ध्वं गच्छन् नु स्मृतेषु पक्षिपक्षे कटिस्थितः ।
[1]मृदङ्गादिप्रहारेषु स्यादधो वदतः करः ॥ ५२७
मुखप्रदेशमागच्छन् नाभिदेशः स्वपार्श्वतः ।
पाषाणादिस्थूलवस्तुग्रहणे तादृशः स च ॥ ५२८
उत्पाटनेऽन्योन्यमुखं पताकाद्वितयं भवेत् ।
सरःपल्वलनिर्देशे स्वस्तिकीभूय विच्युतम् ॥ ५२९
कार्यं पताकाद्वितयं विश्लिष्य स्वस्तिकीकृतम् ।
क्षालनेऽन्यमधिष्ठाय शीघ्रं घर्षन् भवेत् करः ॥ ५३०
तथाविधः शनैर्घर्षन् मर्दने मार्जनेऽपि च ।
स्वस्मिन् पार्श्वे कंपमानः प्रतिषेधे भवेदसौ ॥ ५३१
वायूर्मिवेगेऽधो [2]गच्छन्नुच्छ्रित[3]प्रचलाङ्गुलिः ।
अन्येष्वभिनयेष्वेतं राजराजोपदेशतः ।
लोके युक्तिमवेक्ष्यात्र पताकं [4]योजयेद्बुधः ॥ ५३२

॥ इति पताकः ॥ १ ॥

*

1 ABC मृदाङ्गादि । 2 BC गच्छन् न्नु । 3 ABC च्छ्रित्प्र० । 4 BC पताकयो ।

एतस्यैव यदा वक्रानामिका क्रियते तदा ।
त्रिपताकं [1]विजानीयादभिनेयमथोच्यते ।
एष दध्यादिमङ्गल्यद्रव्यस्पर्शादिषु स्मृतः ॥ ५३३
कुञ्चितोर्ध्वाङ्गुलिद्वन्द्वः स्यादाह्वाने पराङ्मुखः ।
अधस्तलो बहिः क्षिप्ताङ्गुलिद्वन्द्वस्त्वनादरे ॥ ५३४
प्रणामे मस्तकगतः कर्तव्यः पार्श्वतस्तलः ।
अश्रुप्रमार्जने च स्यादधोगच्छदनामिकः ॥ ५३५
आह्वानेऽङ्गुलियुग्मस्य कुञ्चने स्यादवाङ्मुखः ।
उत्तानाङ्गुलियुग्मस्तु वदनोन्नमने भवेत् ॥ ५३६
संशये क्रमतोऽङ्गुल्यौ कर्तव्येऽस्मिन्नतोन्नते ।
अधोमुखो[2] भ्रमन् शीर्ष[3]प्रान्त उष्णीषधारणे ॥ ५३७
तादृशो मस्तकादूर्ध्वं कार्यो मुकुटधारणे ।
तिलके स्याद्भ्रुवोर्मध्या[4]दूर्ध्वगामी ललाटगः ॥ ५३८
अलकस्यापनयने त्वलिकलकसंश्रितः ।
विकृते गंधवाक्शब्दे नासास्यश्रोत्ररोधनम् ॥ ५३९
क्रमात् कुर्वन्नङ्गुलीभ्यां विद्वद्भिर्विनियुज्यते ।
क्षुद्रपक्षिषु च [5]स्रोतस्यल्पे तुच्छेऽनिलेऽपि च ॥ ५४०
क्रमादूर्ध्वमधस्तिर्यक्कटिक्षेत्रगतः करः ।
अधोमुखचला[6]ङ्गुल्यौ दधदेषः प्रयुज्यते ॥ ५४१
अस्रे [7]संमार्जने नेत्रक्षेत्रगां व्रजती[8]मधः ।
अनामिकां[9]दधत् कार्यो लोकाच्छेषेऽभिनीयते ॥ ५४२

॥ इति त्रिपताकः ॥ २ ॥

*

अङ्गुल्यो वितताः श्लिष्टा एकतोऽन्यत्र चापवत् ।
अङ्गुष्ठः क्रियते यस्य सोऽर्धचन्द्रः स्मृतो बुधैः ॥ ५४३
उपर्युत्तानितोऽर्धेन्दौ कपोलफलकं दधत् ।
पराङ्मुखः स्यात् खेदे तु बलान्निःकाशनादिषु ॥ ५४४
पराङ्मुखोऽग्रतो गच्छन् लोकयुक्तिमवेक्ष्य च ।
कटिक्षेत्रगतौ स्यातां [10]रस(? श)नायामधोमुखौ ॥ ५४५

1 A विविजा° । 2 C मुखोमुखोभ्र° । 3 BC शीर्षप्रात । 4 ABC मध्यो दू° । 5 BC चतस्रोत° । 6 BC चलङ्गल्यौ । 7 ABC स्रमार्जने । 8 BC धमः । 9 BC कां दत् । 10 BC तार° ।

मध्योपम्ये(? स्थे) तथा श्लिष्टौ तिर्य[1]गन्योन्यसन्मुखौ ।
कर्णक्षेत्रगतः कार्यः कर्णाभरणधारणे ॥ ५४६
असंयुतोर्ध्वगामिभ्यामुच्छ्रिताभ्यां स्वपार्श्वतः ।
अर्धचन्द्रकराभ्यां[2] चाभिनयो (? नेयो) बालपादपः ॥ ५४७
शङ्खस्याभिनयो ज्ञेयो [3]मुखक्षेत्रगते द्वये ।
पुरतः कलसे स्यातां करावन्योन्यसन्मुखौ ।
कटके मण्डलावृत्त्या मणिबन्धप्रदेशगः ॥ ५४८

॥ इत्यर्धचन्द्रः ॥ ३ ॥

*

अनाश्लिष्टा मध्यमायाः पृष्ठे स्यात्तर्जनी यदा ।
त्रिपताकस्य विज्ञेयस्तदासौ कर्तरीमुखः ॥ ५४९
अलक्तकादिना पादरञ्जने स्यादधोमुखः ।
तद्वदेवाग्रतः कार्यो बुधैर्मार्गप्रदर्शने ॥ ५५०
नासिकाक्षेत्रतः कार्यः कर्णान्तिकमुपाश्रितः ।
दर्शने शीर्षगावेतौ शृङ्गाभिनयने मतौ ॥ ५५१
वितर्कितेऽपराधे च पतने [4]मरणे तथा ।
क्षेप्तव्योऽधोमुखो व्यस्ततर्जनिश्चलदङ्गुलिः ॥ ५५२
उत्तानाङ्गुलिरग्रस्थस्तद्वत् स्याल्लेख्यवाचने ।
द्वित्रिर्वायं प्रयोज्यं [5]स्यादिति तद्वेदितां मतम् ॥ ५५३

॥ इति कर्तरीमुखः ॥ ४ ॥

*

अङ्गुष्ठः कुञ्चितो यत्र तर्जनीचापवन्नता ।
आकुञ्चिताः पूर्वपूर्वपार्श्वगा मध्यमादिकाः ॥ ५५४
भवन्ति यत्र विज्ञेयस्तत्रारालकरो बुधैः ।
हृदयक्षेत्रगोऽयं स्यादाशीर्वादादिकर्मणि ।
खेदापनयने भालक्षेत्रात्कार्य[6] त्वधोमुखः ॥ ५५५
असंबद्धप्रलापे स्याद्बहिः क्षिप्ताङ्गुलिस्त्वयम् ।
श्राद्धकर्मादिके तज्ज्ञैः प्रयोज्योऽयं बहिर्मुखः[7] ॥ ५५६
पतदङ्गुलिराह्वाने जनसंघे तथा व्रजन् ।
प्रदक्षिणे देवतानां भ्रमन् स स्यात् प्रदक्षिणम् ॥ ५५७
अङ्गुल्यग्रः स्वस्तिकः स्याद्विवाहे द्वयसंगमात् ।
बलोत्साहधृतिस्थैर्यगर्वगाम्भीर्यसूचने ॥ ५५८

---

1 ABC तिर्यग्न्यो । 2 BC करभ्यां । 3 BC मुष° । 4 BC मरणे मरणे तथा । 5 BC °ज्यस्या° । 6 ABC त्कार्यत्व° । 7 ABC बहिमुखः ।

नाभिक्षेत्रादूर्ध्वगामी स्यादयं मस्तकावधिः[1] ।
वीप्सया मण्डलावृत्त्या [2]यथौचित्यादयं भवेत् ॥ ५५९
कामिनीनां केशबन्धे तथा तेषां विकीर्णने ।
परस्परमसंबंधभाषणेऽयं प्रयुज्यते ॥ ५६०
पुनः पुनर्बहिः क्षिप्ताङ्गुलिर्युक्तिमुपाश्रितः ।
त्रिपाताकोदिते कर्मण्यखिलेऽयं प्रयुज्यते ॥ ५६१
त्रिपताकेऽप्यरालोक्तं स्त्रीणां पुंसां न युज्यते ।
इति व्यवस्थया केचिदाचार्याः संप्रचक्षते[3] ॥ ५६२

॥ इत्यरालः ॥ ५ ॥

*

तलमध्याग्रसंलग्ना अङ्गुल्यः श्लिष्टसंधयः ।
अङ्गुष्ठो मध्यमापृष्ठसंलग्नो मुष्टिहस्तकः ॥ ५६३
मल्लयुद्धे खड्गकुन्तनिस्त्रिंशादिग्रहे[4] तथा ।
संवाहने दोहने चाग्रगाङ्गुष्ठश्च धावने ॥ ५६४
प्रकोष्ठग्रहणे चापि रसनिष्कर्षणे तथा ।
[5]रसवद् द्रव्यतो लोके युक्तितः स्यात् करद्वये ॥ ५६५

॥ इति मुष्टिः ॥ ६ ॥

*

स एवोर्ध्वीकृताङ्गुष्ठः शिखरः परिकीर्तितः ।
शक्तितोमरयोर्मोक्षे[6]ऽलक्तकोत्पीडनेऽपि च ॥ ५६६
कुशाङ्कुशधनुर्वल्लीग्रहणेऽधररञ्जने ।
अलकोत्क्षेपणे [7]कार्ये कार्यो मुष्टिस्तु युज्यते ॥ ५६७

॥ इति शिखरः ॥ ७ ॥

*

अग्रदेशेन चेल्लग्नाङ्गुष्ठाग्रेणैव तर्जनी ।
एतस्यैव तदा हस्तः कपित्थः कथितो बुधैः ॥ ५६८
धारणे कुन्तवज्रादेः[8] शराकर्षादिकर्मणि ।
चक्रचापगदादीनां ग्रहणे च प्रयुज्यते ।
यथाभूतार्थकथने नियोगे शिखरस्य च ॥ ५६९

॥ इति कपित्थः ॥ ८ ॥

*

---

1 ABC वधि । 2 ABC यथो । 3 ABC संप्रचक्ष्यते । 4 ABC निस्त्रंश । 5 ABC रसव द्रव्यतो । 6 ABC °क्षो । 7 ABC कार्यः कार्ये । 8 ABC °ज्रादिश° cf. धारणे कुन्तवज्रयोः सं. र. अ. ७. श्लो. १३२ ।

अनामिकाकनीयस्यावुत्क्षिप्तेव कृते मनाक् ।
विरलेऽस्यैव चेत् स्यातां तदा स्यात् खटकामुखः ॥ ५७०
उत्तानोऽयं स्रगादाने चामरस्यापि धारणे ।
प्रसूनावचये बाणाकर्षणे दर्पणग्रहे[1] ॥ ५७१
वल्गाग्रहे पत्रवृन्तच्छेदने वीटिकाग्रहे ।
शरमन्थाकर्षणे च लोकयुक्तिमवेक्ष्य च ।
पेषणे कुङ्कुमादीनामिमौ कार्यावधस्तलौ ॥ ५७२

॥ इति खटकामुखः ॥ ९ ॥

*

तर्जन्यनामिकेऽत्यन्तवक्रेऽरालस्य चेत् स्थिते ।
शुकतुण्डस्तदा हस्त ईर्ष्यायां [2]प्रेमकोपतः ॥ ५७३
सापराधे प्रिये [3]द्यूताक्षपाते [4]लेखधारणे ।
वीणादिवादने चास्य प्रयोगः कैश्चिदिष्यते ॥ ५७४
न त्वं नाहं न मे कृत्यमित्यसंबन्धभाषणे ।
बहिः क्षिप्ताङ्गुलिः स स्यात् सावज्ञे तु विसर्जने ।
अन्तर्मध्याङ्गुलिः स स्यात् सावज्ञावाहने तथा ॥ ५७५

॥ इति शुकतुण्डः ॥ १० ॥

*

तर्जन्यङ्गुष्ठमध्याः स्युरूर्ध्वास्त्रेताग्निवत् स्थिताः ।
वक्रानामा कनिष्ठोर्ध्वाः काङ्गूले हस्तके भवेत् ॥ ५७६
चुचुकाभिनये तद्वच्चिबुकग्रहणे शिशोः ।
बिडालस्य पदे [5]कार्यः कुसुमे चम्पकस्य च ।
मिते ग्रासे फलेऽस्यैव रत्नाद्यभिनये[6]ऽपि च ॥ ५७७

॥ इति काङ्गूलः ॥ ११ ॥

*

साङ्गुष्ठाङ्गुलयः किञ्चित्कुञ्चिता[7] विरलास्तथा ।
अलग्नाग्रा भवेयुश्चेत् पद्मकोशस्तदा करः ॥ ५७८
पुष्पाणां ग्रहणे नांदीपिण्डदाने च विस्तृतः ।
भूमिस्थितार्थग्रहणे कुञ्चिताग्रस्त्वधोमुखः ॥ ५७९
फुल्लाब्जेन्दीवरादौ तु संश्लिष्टमणिबन्धकौ ।

1 ABC दर्पणाग्रहे । 2 BC प्रेमके यतः । 3 ABC °क्षेपाते । 4 ABC लेषधारणे ।
5 ABC कार्ये । 6 ABC °नये नच । 7 ABC किंचि कुचिता ।

विरलाङ्गुलीपद्मकोशौ सिंहाद्यैरामिषग्रहे ।
लोकानुसारतः कार्यः क्वचिदेकः क्वचिद्वयम् ॥ ५८०

॥ इति पद्मकोशः ॥ १२ ॥

*

व्यावर्त्तिताख्यं करणं कृत्वा वा परिवर्तितम् ।
यत्राङ्गुल्यः करतले पार्श्वस्थाः सोऽलपल्लवः ॥ ५८१
अयमेवालपद्मः स्यात् परिवर्तितमाश्रितः ।
अनृतायुक्तमिथ्योक्तौ कस्य त्वमिति वादने ।
स्वापराधप्रोञ्छने च स्त्रीभिर्नास्तीतिवादने ॥ ५८२

॥ इत्यलपल्लवः ॥ १३ ॥

*

[1]खटकामुखहस्तस्य यस्मिन्नूर्ध्वप्रसारिता ।
तर्जनी दृश्यते सोऽयं हस्तः सूचीमुखो भवेत् ॥ ५८३
एकत्वे सरलोर्ध्वा स्यान्नासास्थाश्वासवीक्षणे ।
भ्रमन्ती वलयाकारस्तूर्ध्वा स्याच्चक्रसूचने ॥ ५८४
आयान्ती शीघ्रमूर्ध्वाधः सौदामिन्यामियं भवेत् ।
कुलालचक्राभिनये भ्रमन्ती स्यादधोमुखी ॥ ५८५
रथचक्राभिनयने भ्रामयेन्निजपार्श्वतः ।
साधुवादे ध्वजे चापि चलामूर्ध्वां च दर्शयेत् ॥ ५८६
कर्णावतंसे कर्णान्तं नयेदीषत् प्रकम्पिताम् ।
स्तबकाभिनये किञ्चित् कुञ्चिता[2] स्यात् प्रसारिता ॥ ५८७
कुटिलायां गतौ कार्या मण्डलाकारधारिणी ।
भ्रमे त्वत्यन्तमसकृत् पार्श्वात्पार्श्वान्तरं व्रजेत् ॥ ५८८
चलत्किशलये दीपशिखायामपि चेष्[3]यते ।
नक्षत्राद्यवलोके च सरलोर्ध्वमुखा भवेत् ॥ ५८९
भ्रमन्ती मण्डलाकारं पतने तु पतत्यधः ।
सिंहादिदंष्ट्राभिनये त्वोष्ठप्रान्तगतावुभौ ॥ ५९०
किञ्चित् पार्श्वनतौ कार्यौ[4] करौ सूचीमुखौ सदा ।
संयोगे पार्श्वसंयुक्त [5]तर्जन्योऽधस्तले मते ॥ ५९१
वियोजिते वियोगे तु कलहे स्वस्तिकीकृते ।
कर्णकण्डूयनेऽनिष्टश्रवणे श्रवणोपगा ॥ ५९२

---

1 ABC षटका । 2 ABC कुचिता । 3 ABC सेष्यते । 4 ABC कायो । 5 ABC न्यकले cf अधस्तले सं. २. अ. ७. श्लो. १५१ ।

[1]चिकुरापनयस्वेदापनये किल संश्रिता ।
तर्जकम्पितोर्ध्वा स्यात् सीवने चांशुकस्य च ॥ ५९३
चलाग्रगा ज्ञात[2]प्रश्ने किञ्चित् पार्श्वनता भवेत् ।
ईश्वराभिनये भालदेशगा स्यादधोमुखी ॥ ५९४
देवेन्द्राभिनये सा स्यात्तिरश्चीनोन्नता भवेत् ।
परिवेषाभिनयने भ्रामयेन्मण्डलाकृतिम् ॥ ५९५
तिरश्चीनां तर्जनीं च तथान्यदपि लोकतः[3] ।
नाट्याचार्योपदेशेन स्वयमूह्यं विपश्चिता ॥ ५९६

॥ इति सूचीमुखः ॥ १४ ॥

*

पताको निम्नमध्यो यः स तु सर्पशिरा भवेत् ।
अधोगामी सर्पगतावुत्तानो देवतर्पणे ॥ ५९७
मल्लानां च भुजास्फोटे नियुद्धादिषु कीर्तितः ।
प्रस्थ(?स्थि) ते परिमाणे वास्फालने करिकुम्भयोः ॥ ५९८

॥ इति सर्पशिराः ॥ १५ ॥

*

मध्यमामध्यमो यत्र पताकाङ्गुष्ठको भवेत् ।
कनिष्ठिका चोर्ध्वगता स भवेच्चतुरः करः ॥ ५९९
अन्ये कनिष्ठिकामीषदनामापृष्ठगां जगुः ।
पताकाङ्गुष्ठकं मध्यामूलगं चतुरे करे ॥ ६००
नये वदनदेशेऽसौ विनये मणिबन्धयोः ।
युतौ विचारे पार्श्वस्थ[4] ऊहापोहे हृदि स्थितः ॥ ६०१
उद्वेष्टितयुतः कार्यो लीलायां कैतवे[5] पुनः ।
स मोक्षप्रेरणे च स्याच्छनैरूर्ध्वतलः करः ॥ ६०२
मर्दनाभिनये कार्यो मध्यमाङ्गुष्ठमर्दनः ।
चातुर्यवचने त्वेतौ संयुतौ चतुरौ करौ ॥ ६०३
उत्तानौ नयनौपम्ये पद्मपत्रनिरूपणे ।
मृगकर्णाभिनेये च बालके स्यादधोमुखः ॥ ६०४
विधेयौ स्वस्तिकाकारौ सुरताभिनये करौ ।
स्वल्पार्थाभिनये तद्वद्व्रणकस्यापि सूचने ॥ ६०५
चतुरश्चतुरैः कार्यः चतुष्ष्वर्थेषु लोकतः[6] ।

॥ इति चतुरः ॥ १६ ॥

*

---

1 ABC चिकुरोप° । 2 ABC प्रश्नो । 3 ABC लोकता । 4 ABC °स्थाऊ° । 5 ABC वैतवे । cf कैतवे सं. र. अ. ७ श्लो. १६७ । 6 ABC लोकता ।

भवेतां सर्पशिरसो यदाङ्गुष्ठकनिष्ठिके ॥ ६०६
ऊर्ध्वाकृती तदा हस्तौ मृगशीर्ष उदाहृतः ।
अद्येह सांप्रतार्थेषु सोऽधो द्यूताक्षपातने ॥ ६०७
उत्तानोऽलिकदेशादिस्वेदापनयने भवेत् ।
अलिकादिक्षेत्रसंस्थ एवमाद्यूहयेत्परम् ॥ ६०८

॥ इति मृगशीर्षः ॥ १७ ॥

*

तर्जन्यङ्गुष्ठमध्याः स्युर्यत्र त्रेताग्निवत् स्थिताः ।
लग्ना यत्रोर्द्ध्वविरले शेषे सो हंसवक्त्रकः ॥ ६०९
श्लक्ष्णे मृदुनि निःसारे मर्दिताङ्गुलिकत्रयः ।
शिथिलेऽल्पे लघा[1]वग्रं दधत् क्षिप्रं विधूनितम् ॥ ६१०
मुक्ताफलादिवेधे च कुसुमावचयादिषु ।
स्युतविच्युतभेदेन यथौचित्यं विधीयते ॥ ६११

॥ इति हंसास्यः ॥ १८ ॥

*

पताकस्य न तन्मूलं तर्जन्याद्यङ्गुलित्रयम् ।
यदि किश्चिद् भवेत् स स्यात् हस्तको हंसपक्षकः ॥ ६१२
आचमने स्यादुत्तानश्चन्दनाद्यनुलेपने ।
अधोगतस्तथोत्तानः प्रतिग्रहकृतौ मतः ॥ ६१३
[2]त्रिपुंड्रादिविधौ कार्यो भालक्षेत्रगतः करः ।
प्रत्यक्षे च परोक्षे चालिङ्गने स्वस्तिकौ करौ ॥ ६१४
स्तम्भाद्यभिनये कार्यौ मण्डलाकृतिसुन्दरौ ।
स्त्रीणां विभ्रमभेदेषु स्तनयोरन्तरे भवेत् ॥ ६१५
कपोलदेशे विधृतश्चिन्तायां[3] हनुधारणे ।
रसभावानुभावेषु यथौचित्यं प्रयोजयेत् ।
अनुक्तेषु करेषु स्युरनुभाववशानुगाः ॥ ६१६

॥ इति हंसपक्षः ॥ १९ ॥

*

स करो भ्रमरो यत्र मध्यमाङ्गुष्ठकौ मिथः ।
श्लिष्टाग्रौ तर्जनी नम्रान्ये [4]तूर्ध्वे विरले तथा ।
कर्णपूरे तालपत्रे कण्टकोद्धरणादिषु ॥ ६१७

॥ इति भ्रमरः ॥ २० ॥

*

1 ABC लषा° । 2 ABC त्रिपुंद्रादि° । 3 ABC श्चितायां । 4 ABC त्तूर्यें । cf सं २. अ. ७. श्लो. १६८ ।

साङ्गुष्ठाङ्गुलयो यत्र संलग्नाग्राः सुसंहताः ।
ऊर्ध्वाः स मुकुलो ज्ञेयो मुकुलाकारपेशलः ॥ ६१८
सुरार्चने भोजने च बलिकर्मणि कुड्मले ।
मुहुर्विकाश्य प्रकृतिं नीतो दाने त्वरान्विते ॥ ६१९
कमलादेः प्रार्थनायां संख्याप्रश्नकसूचने ।
सविधे कामिनीनां तु मुखस्थो विटचुम्बने ॥ ६२०
स्यादाच्छुरितकेऽप्येष रसभावविजृम्भितः ।
कामिनीकुचकक्षादौ सशब्दं नखलेखनम् ।
यदङ्गुलीपञ्चकेन तदाच्छुरितकं विदुः ॥ ६२१

॥ इति मुकुलः ॥ २१ ॥

*

पञ्चाप्यङ्गुलयो यत्र पद्मकोशस्य कुञ्चिताः ।
ऊर्णनाभः स विज्ञेयः शिरःकण्डूयनादिषु ॥ ६२२
चौर्येण वस्तुग्रहणे कुष्ठाद्यभिनयेन च ।
सिंहव्याघ्राद्यभिनये चिबुकक्षेत्रगौ च तौ ।
स्वस्तिकौ तु करौ कार्यौ फलादेर्ग्रह एककः ॥ ६२३

॥ इत्यूर्णनाभः ॥ २२ ॥

*

[1]अरालाङ्गुष्ठतर्जन्यौ मिलिताग्रौ तथा पुनः ।
तलमध्यो(?ध्ये) [2]सनाग्निस्तः(?मनाग् न्यस्तः)
स कं(?सं)दंशोऽभिधीयते ॥ ६२४
अग्रजो मुखजश्चैव पार्श्वजश्चेत्ययं त्रिधा ।
तत्राग्रजः प्राङ्मुखः स्यान्मुखजः सम्मुखो भवेत् ॥ ६२५
पार्श्वतः स्यात्पार्श्वमुखो विनियोगोऽधुनोच्यते ।
कुसुमच्छेदने वृन्तात् कण्टकोद्धरणे तथा ॥ ६२६
सूक्ष्मप्रसूनावचये संदंशोऽग्रज उच्यते ।
वर्त्यञ्जनशलाकादिपूरणे मुखजो मतः ॥ ६२७
धिगित्युक्तौ तु रोषेण संदंशः पार्श्वजः शुभः ।
मणिमुक्ताप्रवालादौ गुणनिक्षेपणे मतः ॥ ६२८
मणीनां वेधने चापि तत्त्वस्यापि प्रभाषणे ।
ध्याने निरूपणे सूक्ष्मत्र्यणुकादेस्तु घर्षणे ॥ ६२९

---

1 ABC आरालाङ्गुष्ठतर्जन्यो । 2 cf. किंचिच्चेत्तलमध्यस्थस्तदा संदंश उच्यते ॥ सं. र. अ. ७ श्लो. १७६ ।

अलक्तकादिवस्तूनां चित्रकर्मण्यपीष्यते ।
पार्श्वाभिमुखहस्ताभ्यां दरिद्रस्य प्रकाशने ॥ ६३०
भाषणे सद्वितीये स्यात् सरोषे वामहस्ततः ।
किञ्चिदग्रविवर्त्तेन तथान्येष्वपि युक्तितः[1] ॥ ६३१

॥ इति संदंशः ॥ २३ ॥

*

अङ्गुष्ठो मध्यमाग्रेण संलग्नः कुटिला यदा ।
तर्जन्यन्ये तलस्थे चेत्ताम्रचूडस्तदा करः ॥ ६३२
शीघ्रये[2] विश्वासकार्ये च बालाह्वाने च भर्त्सने ।
ताले कलामुहूर्तादौ छोटिकादौ च शब्दवान् ॥ ६३३
प्रसारितकनिष्ठां च मुष्टिमन्ये प्रचक्षते ।
ताम्रचूडं सहस्रादौ गणने विनियुज्यते ।
क्षिप्तमुक्ताङ्गुलिः प्रोक्तो विप्रुषोऽभिनये बुधैः ॥ ६३४

॥ इति ताम्रचूडः ॥ २४ ॥

॥ इति चतुर्विंशतिरयुतहस्ताः ॥

*

पताको विरलाङ्गुष्ठ उपधानः करो भवेत् ।
स्याच्चिन्ता[3] निद्रयोरेष उपधानेऽपि युक्तितः ॥ ६३५

॥ इत्युपधानः ॥ २५ ॥

*

कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ यत्राधोगतौ संहतं पुनः ।
तर्जन्यादित्रयं स स्यात् सिंहास्यस्तत् स्वरूपतः ।
सिंहस्याभिनये स स्यात् मेलने द्रवचूर्णयोः ॥ ६३६

॥ इति सिंहास्यः ॥ २६ ॥

*

संहताङ्गुलयो यत्र[4] मध्ये वर्तुलतात्मता[5] ।
कदम्बोऽसौ रसास्वादे हस्तको विनियुज्यते ॥ ६३७

॥ इति कदम्बः ॥ २७ ॥

*

पताकाङ्गुष्ठको यत्र मध्यमामूलसंश्रितः ।
निकुञ्चकोऽसौ स्वल्पार्थे वेदस्याध्ययने मतः ॥ ६३८

॥ इति निकुञ्चः ॥ २८ ॥

*

---

1 BC यक्तितः । 2 ABC °ध्यै । 3 ABC चिता । 4 ABC मन्ते । 5 ABC °त्मतां ।

एभिश्चतुर्भिः सहिता अष्टाविंशतिरयुतहस्ताः ।
भवेतां यत्र संश्लिष्टे पताकस्य तले मिथः ।
अञ्जलिर्नाम हस्तोऽयं विनियोगोऽस्य कथ्यते ॥ ६३९
धार्यः क्रमात् शीर्षिण वक्रे चक्षुर्देशे नमस्कृतौ ।
देवताया गुरोश्चैवं ब्राह्मणानां नृभिस्त्वयम् ।
नियतो नियतस्थाने स्त्रीभिरेष प्रयुज्यते ॥ ६४०

इत्यञ्जलिः ॥ १ ॥

*

करावश्लिष्टतलकौ श्लिष्टमूलाग्रपार्श्वकौ ।
कपोताकृतितो हस्तः कपोतः कीर्तितो बुधैः ॥ ६४१
इममेव परे प्राहुः कूर्मकं नाट्यवेदिनः ।
विनये गुरुसम्भाषे प्रणामे प्राङ्मुखो मतः ॥ ६४२
वक्षःस्थः कम्पितः कार्यः स्त्रीकापुरुषयो[1]र्भये ।
स खेदवाक्याभिनये नेदानीमितिसूचने ॥ ६४३
इयत्तायाः परिच्छेदे[2]ऽङ्गुलिः स्पर्शनपूर्वकम् ।
विमुक्तोऽयं बुधैः कार्यो युक्तितोऽभिनयान्तरे ॥ ६४४

॥ इति कपोतः ॥ २ ॥

*

अङ्गुल्यो यत्र करयोरन्योन्यस्यान्तरेषु च[3] ।
अन्तर्बहिर्वा दृश्यन्ते निर्गताः स तु कर्कटः ॥ ६४५
पराङ्मुखतलः किञ्चिदन्तर्नीताखिलाङ्गुलिः ।
ऊर्ध्वं पार्श्वेऽ[4]ग्रतो वा स्यात् कामावस्थाङ्गमोटने ॥ ६४६
बहिर्गताङ्गुलिः स्थूलजरठस्य(?जठरस्य) निरूपणे ।
जरठः क्षेत्रगः (?जठर-क्षेत्रगः)[5] कार्यो
मनाक् चक्राङ्गुलिः पुनः ॥ ६४७
शंखस्य धारणे कार्यो जृम्भादौ बहिरङ्गुलिः ।
खेदेऽङ्गुलीनां पृष्ठे स्याद्धनू राजाभिषेचने ।
मूर्ध्नि धार्याः(?र्यो) द्विस्त्रिर्वायं [स्नानकार्ये][6] प्रयुज्यते ॥ ६४८

॥ इति कर्कटः ॥ ३ ॥

*

1 BC °षयोभ° । 2 BC परिच्छेदगुलिः । 3 A तु । 4 AC पार्श्वग्र° । 5 cf जठर-क्षेत्रगः सं. र. अ. ७ श्लो. १९१ । 6 The missing words are supplied from Aśokamalla's work on Nṛtya. cf ······स्नानकर्मणि । द्विस्त्रिर्वा मूर्ध्नि संयोज्यो गृहे तु स्यादधस्तलः । folio 11 A of the ms.

अरालाख्यौ[1] पताकौ वा खटकामुखसंज्ञकौ।
अन्योन्यमणि[2]बन्धस्थावुत्तानौ वामपार्श्वगौ।
हृदयक्षेत्रगौ वा स्तश्चेत्तदा स्वस्तिकौ मतौ ॥ ६४९
एवमस्तीति नारीणां भाषणे विच्युतः स तु।
सागराकाशमुख्येषु विस्तीर्णेषु प्रयुज्यते ॥ ६५०

॥ इति स्वस्तिकम् ॥ ४ ॥

*

अन्योन्याभिमुखौ स्यातां हस्तौ चेत् [3]खटकामुखौ।
स्वस्तिकौ मणिबन्धे वा [4]खटकावर्धमानकः ॥ ६५१
उत्तानपादयं(?उत्तानः स्यादयं) [5]सूर्योदयादौ प्रथमे मते।
प्रमाण(?प्रणाम)[6]करणे पुष्पग्रथने सत्यभाषणे।
ताम्बूलग्रहणे यूनोर्द्वितीये तिर्यगाननः ॥ ६५२

॥ इति खटकावर्धमानः ॥ ५ ॥

*

[7]सर्पशीर्षौ पताकौ वा स्वस्तिकौ [8]मणिबन्धगौ।
परस्परस्कन्धदेशौ गतावुत्सङ्गसंज्ञके ॥ ६५३
दक्षपार्श्वगतं यद्वा वामपार्श्वगतं नु वा।
उत्सङ्गे केचिदिच्छन्ति स्वस्तिकं [9]नृत्यकोविदाः ॥ ६५४
पार्श्वस्याभिमुखे यद्वा हस्तयोः पृष्ठके यदा।
कूर्परौ स्वस्तिकाकारौ उत्सङ्गे केचिदूचिरे ॥ ६५५
अतिप्रयत्नसाध्येऽर्थे लीलाया ग्रहणे तथा।
[10]पराङ्मुखस्य शीते वा रोषामर्षकृते तथा।
प्रार्थनानभ्युपगमे लज्जादावपि योषिताम् ॥ ६५६

॥ इत्युत्सङ्गः ॥ ६ ॥

*

स्कन्धकूर्परयोर्मध्यमन्योन्यस्य भुजौ यदा।
ईषदूर्ध्वप्रदेशस्थौ गृह्णीतः [11]सर्पशीर्षकौ ॥ ६५७
तदा स्यान्निषधो हस्त औत्सुक्यादौ नियुज्यते।
गाम्भीर्यस्थैर्यगर्वादौ आचार्यैर्विनियुज्यते ॥ ६५८

---

1 ABC °ख्यो। 2 ABC °मंबस्थौ। 3 ABC खटिका। 4 ABC खेटका। 5 cf सूर्योदयादावुत्तानः स्यादयं प्रथमे मते Vipradāsa quoted in भ. को. पृ. १५३। 6 cf प्रणामकरणे ना. शा. अ. ६ श्लो. १३८ and Vipradāsa भ. को. पृ. १५६। 7 ABC सप्तशीर्षौ। 8 ABC स्वस्तिके। 9 ABC मृत्यको°। 10 AC पुराङ्मुखस्य। 11 ABC सप्त°।

कपित्थो हस्तको वापि दक्षवामेतरं करम् ।
मुकुलं वेष्टिते प्राहुस्तदान्यं निषधं परे ॥ ६५९
शास्त्रार्थस्य स्वीकरणे स्वीकृतार्थस्य धारणे ।
[1]मान्यमेतदिदं वाक्यमित्युक्तौ पीडनेऽपि च ।
तथा समयशास्त्रोक्तसंकेतग्रहणेऽपि च ॥ ६६०

॥ इति निषधः ॥ ७ ॥

*

दोले श्लथांसौ कर्तव्यौ पताकौ विरलाङ्गुली ।
लम्बमानौ नियोज्योऽयं मूर्च्छायां व्याधिखेदयोः ॥ ६६१
संभ्रमे गर्वगमने कर्तव्यः पार्श्वदोलितः ।
मदे चैव यथायोगं स्तब्धो वा क्रियते करः ॥ ६६२

॥ इति दोलः ॥ ८ ॥

*

उत्तानो व्यक्तसंश्लिष्टकरभौ सर्पशीर्षकौ ।
स्यातां पुष्पपुटो नाम पुष्पाञ्जलिविसर्जने ॥ ६६३
धान्यपुष्पफलादीनां ग्रहणे च समर्पणे ।
[2]अर्घार्थिसंप्रदाने च तोयस्यानयनेऽपि च ।
पाणिपात्रा[3]शने राज्ञः प्रसादग्रहणे गुरोः ॥ ६६४

॥ इति पुष्पपुटः ॥ ९ ॥

*

परस्परोपरिगतौ सुसंश्लिष्टावधोमुखौ ।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठौ पताकौ तौ भये(?वे) तां मकरे करे ॥ ६६५
क्रव्यादमत्स्यमकरद्विपीनां व्याघ्रसिंहयोः ।
नद्याः पूरे च बाहुल्ये प्रयोज्योऽयं विचक्षणैः ॥ ६६६

॥ इति मकरः ॥ १० ॥

*

कटिक्षेत्रे सर्पशीर्षौ कुञ्चन्कूर्परकौ यदा ।
गजदन्तस्तदा हस्तो ग्रहे[4] स्तम्भस्य स स्मृतः ॥ ६६७
महाभारस्योद्वहने केचिदेनं प्रचक्षते ।
प्रथमं निषिधं तं च वरवध्वोः समेतयोः ॥ ६६८

---

1 ABC मन्य° । 2 ABC अध्यर्थिसंप्रदाने । cf अर्धदाने° Vipradāsa in भ. को. पृ. ३७५ । 3 ABC °पात्रशने । 4 BC गृहे ।

विवाहस्थाननयने तथा शि(?शै)लशिलादिनः[1]।
वृक्षादीनां चालने च कर्तव्यः स्याद्गतागतः ॥ ६६९

॥ इति गजदन्तः ॥ ११ ॥

*

शुकतुण्डावधोवक्त्रौ हृदयाभिमुखौ करौ ।
कृत्वाधो नीयमानो चेदवहित्थस्तदोदितः ।
दौर्बल्यौत्सुक्यनिःश्वासगात्रकार्श्येष्वसौ भवेत् ॥ ६७०

॥ इति अवहित्थः ॥ १२ ॥

*

मृगशीर्षौ हंसपक्षावथवा सर्पशीर्षकौ ।
पराङ्मुखौ स्वस्तिकत्वं प्राप्तौ स्याद्वर्धमानकः ॥ ६७१
स्वस्तिकेन विना भूतौ तावेनं केचनाभ्यधुः ।
द्वारवातायनादीनां कपाटोद्घाटने मतः ॥ ६७२
श्रीमत्कीर्तिधराचार्यो द्वितयं निषधं करं ।
वर्धमानाभिधं प्राह विनियोगस्तु पूर्ववत् ॥ ६७३

॥ इति वर्धमानः ॥ १३ ॥

*

सुश्लिष्टाग्रौ पताकौ चेत् हस्तौ [प्र]योगदस्तदा ।
[2]मेलने प्रीतियोगे च परस्परमयं मतः ॥ ६७४

॥ इति प्रयोगप्रदः ॥ १४ ॥

*

किञ्चित् श्लिष्टभुजावेव पताकौ स्वस्तिकीकृतौ ।
आलिङ्गनो भवेद्धस्त आलिङ्गनविधौ मतः ॥ ६७५

॥ इत्यालिङ्गनः ॥ १५ ॥

*

श्लिष्टौ मिथश्चेच्छिखरौ करौ द्विशिखरस्तदा ।
शयनार्थेऽङ्गुलिस्फोटे नास्तीति कथनेऽपि च ॥ ६७६

॥ इति द्विशिखरः ॥ १६ ॥

*

सभाधीशमुखं हस्तं कृत्वोर्ध्वविरलाङ्गुलिः ।
अस्य पृष्ठे द्वितीयोऽपि तदङ्गुल्यन्तराङ्गुलिः ॥ ६७७
उभयोः करयोः प्रान्ते तथाङ्गुष्ठौ बहिर्गतौ ।

---

1 शैलशिलादिनः. cf सं. र. अ. ७ श्लो. २०७ शैलशिलोत्पाटे । 2 BC सेलने ।

कलापं हस्तकं प्राहुः केचिच्छेषकणं(?रं) त्वमुं ।
अभिनेये फणीशेऽमुं तथा भूमीश्वरे जगुः ॥ ६७८

॥ इति [1]कलापः ॥ १७ ॥

*

कलाप एव शीर्षत्थः(?स्थः)[2] किरीट इति कथ्यते ॥ ६७९

॥ इति किरीटः ॥ १८ ॥

*

कूर्परौ पार्श्वलग्नौ चेत्स्यातां पुष्पपुटाभिधे ।[3]
तदा स्याच्चषको हस्तः पाणिपात्रे नियुज्यते ॥ ६८०

॥ इति चषकः[4] ॥ १९ ॥

*

उत्तानो वामहस्तश्चेत् पताकस्तदुपर्यपि ।
चलत्संदंशहस्तश्चेत् पर(?परः)स्याल्लेखनस्तदा ।
लेखने विनियोज्योऽयं नृत्याभिनयगोऽपि च ॥ ६८१

॥ इति लेखनः ॥ २० ॥

*

एते [5]विंशतिसंख्याकाः संयुता हस्तकाः स्मृताः ।
अथ नृत्ताख्यहस्तानां प्रपञ्चमपि दध्महे[6] ॥ ६८२
प्राङ्मुखौ[7] खटकावक्रौ वक्षसोऽष्टाङ्गुलान्तरे ।
समानकूर्परस्कन्धौ चतुरस्रावुदाहृतौ ।
आकर्षणे समाख्यातौ मुक्ताहारस्रगादिनः ॥ ६८३

॥ इति चतुरस्रौ ॥ १ ॥

*

हंसपक्षाख्यकरयोः [8]समयोश्चेद्यदेककः ।
उत्तानोऽधो व्रजत्यन्यो वक्षसो यात्यधोमुखः ॥ ६८४
तदोद्वृत्तौ समाख्यातौ तालवृन्तनिरूपणे ।
तावेव तालवृन्ताख्यौ चतुरस्रविशेषितौ ॥ ६८५
हंसपक्षीकृतौ तौ तु व्यावृत्तिपरिवर्त्तितौ ।
उद्वृतौ हस्तकौ तौ तु जयशब्दे नियोजितौ ॥ ६८६

इत्युद्वृत्तौ ॥ २ ॥

*

तुल्यांश(?स)कूर्परौ तिर्यग्भूतौ [9]संमुखस्थतलौ ।

1 A कपालः BC कपोलः । 2 cf कलाप एव शीर्षस्थः । Vipradāsa भ. को. पृ. १३६ । 3 BC °निधे । 4 ABC इतिति च° । 5 BC °तिरव्या° । 6 BC दध्महो । 7 BC प्राङ्मुखो । 8 BC drop समयो । 9 ABC मुखतस्तलौ । cf संमुखस्थतलौ । सं. र. अ. ७ श्लो. २२१ ।

उद्वृत्तीभूय पश्चाच्च त्र्यस्रीभूतौ स्वपार्श्वगौ ।
हंसपक्षौ तलमुखौ मधुरे मर्द्दलध्वनौ ॥ ६८७

॥ इति तलमुखौ ॥ ३ ॥

*

हंसपक्षकराश्लिष्टस्वस्तिकः स्वस्तिकौ करौ ॥ ६८८

इति स्वस्तिकौ ॥ ४ ॥

*

तावेव [1]विप्रकीर्णाख्यौ झटिति स्वस्तिके च्युते ।
पराङ्मुखावुन्नताग्रौ नीचाग्रौ वा व्यवस्थितौ ।
कुचाभ्यां पुरतो हंसपक्षौ तौ[2] विप्रकीर्णकौ[3] ॥ ६८९

इति विप्रकीर्णकौ ॥ ५ ॥

*

पताकौ स्वस्तिकीभूय व्यावृत्तपरिवर्तने[4] (? °वर्तितौ) ।
कृत्वा [5]वाममथोत्तानमरालं रचयेत्करम् ॥ ६९०
अधोवक्त्रं दक्षिणं च खटकामुखतां गतौ ।
चातुरस्रेण कथितावरालखटकामुखौ ॥ ६९१
पद्मकोशावथो[6]द्धास्यौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ ।
अरालौ स्वस्तिकाकारौ जायेते खटकामुखौ ॥ ६९२
चातुरस्र्याविशेषे तावरालखटकामुखौ ।
[7]वणिजां सख्यिवादीनां वितर्केऽसौ प्रयुज्यते ॥ ६९३
अथवा हृदयाग्रस्थः प्राङ्मुखः खटकामुखः ।
परोऽरालः प्रोन्नताग्रस्तिर्यगल्पप्रसारितः ॥ ६९४
परस्परान्यपार्श्वस्थौ स्वपार्श्वे वा व्यवस्थितौ ।
तालान्तरौ तदा प्रोक्तावरालखटकामुखौ ॥ ६९५

इत्यरालखटकामुखौ ॥ ६ ॥

*

भुजाग्रकूर्परांसेषु सविलासेषु चेत्करौ ।
भूत्वा पताकौ व्यावृत्तं विधाय भवतो द्रुतम् ॥ ६९६
अधस्तलौ तदाविद्धवक्त्रौ नृत्यकरौ मतौ ।
केचित् पताकयोः स्थानेऽरालौ तौ संप्रचक्षते ।
विक्षेपवलने चैव विनियोगं प्रचक्षते ॥ ६९७

इत्याविद्धवक्त्रौ ॥ ७ ॥

*

---

1 ABC वप्र० । 2 ABC °पक्षोस्तै । 3 BC °र्णिकौ । 4 cf Aśokamalla पताकौ स्वस्तिकीकृत्य व्यावृत्तपरिवर्तितौ । (folio 15 b) 5 ABC °त्वामपथो° । cf क्रमात् कृत्वा यत्र वाममुत्तानारालमाचरेत् । सं. र. अ. ७ श्लो. २२५ । 6 ABC °वण्य° । 7 ABC मणिजां । cf वणिजां । सं. र. अ. ७ श्लो. २२७ ।

चतुरस्रौ स्वस्तिकौ वा सर्पशीर्षौ यदा करौ।
मध्यमासंगताङ्गुष्ठौ पर्यायप्रसृतौ तिरः॥ ६९८
बहिः प्रसारितां धत्तस्त्वङ्गुलीं चेत्प्रदेशिनीं।
तदा सूचीमुखादत्र विशेषं केचिदूचिरे॥ ६९९
पूर्वं पताकौ कर्तव्यौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ।
भ्रान्त्वा प्रसरणं कृत्वा पश्चादन्यस्तु पूर्ववत्॥ ७००
केषांचन मते सर्पशीर्षाकारौ करौ स्थितौ।
मध्यप्रसारिताङ्गुष्ठौ रेचितस्वस्तिकौ तथा।
सूचीमुखौ भवेतां ताविति सूच्यास्यलक्षणम्॥ ७०१

इति सूच्यास्यौ॥ ८॥

*

प्रसारितोत्तानतलौ हंसपक्षौ द्रुतभ्रमौ।
रेचितौ तौ[1] नृसिंहस्य[2] दैत्यवक्षोविदारणे॥ ७०२
केचिदुत्तानप्रसृतौ पताकौ रेचितौ जगुः।
केचिदेतौ पूर्वलक्ष्मविभागेन पृथग्विदुः॥ ७०३

इति रेचितौ॥ ९॥

*

रेचिते दक्षिणे हस्ते वामे च खटकामुखे।
अथवा [3]चतुरस्रेणैकेनोक्तावर्धरेचितौ॥ ७०४

इत्यर्धरेचितौ॥ १०॥

*

एतत्करविपर्यासात् ब्रूतेऽर्धचतुरस्रकौ॥ ७०५

इत्यर्धचतुरस्रौ॥ ११॥

*

[4]त्रिपताकौ [5]तिरश्चीनावन्योन्याभिमुखौ करौ।
अंसकूर्परयोः किंचिचलतोश्चेत्कपोलयोः॥ ७०६
हृदयांसललाटानां क्षेत्रे चान्यतमे स्थितौ।
क्षणमूर्ध(? र्ध्व)तलौ भूत्वा च [6]लतश्चेद्यदा तदा।
उत्तानवञ्चितौ[7] हस्तौ कथितौ[8] नृत्यकोविदैः॥ ७०७

इत्युत्तानवञ्चितौ॥ १२॥

*

---

1 ABC °तौतो। 2 ABC °हास्य cf. प्रयोज्यौ तौ नृसिंहस्य दैत्यवक्षोविदारणे। सं. र. अ. ७ श्लो. २३७। 3 ABC चतुणस्तेणै° cf एकेन चतुरस्रेण। सं. र. अ. ७ श्लो. २३७। 4 ABC त्रिपताको cf. त्रिपताकौ। सं. र. अ. ७ श्लो. २४५। 5 BC तिर्यञ्चौ। 6 ABC श्चल°। 7 ABC °संचितौ। 8 ABC कथितो।

भूत्वोत्तानावधोवक्त्रौ पताकत्रिपताकयोः ।
करावन्यतरौ स्कन्धदेशान्निष्क्रम्य चेदिमौ ॥ ७०८
रेचितं विदधाते तौ नितम्बावुदितौ करौ ।
पृष्ठक्षेत्रे भ्रमं केचिदेतयोः संप्रचक्षते ॥ ७०९
इति नितम्बौ ॥ १३ ॥

*

पताकौ त्रिपताकौ वा शिथिलोर्ध्वप्रसारितौ[1] ।
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां स्वस्तिकाकारमापितौ ॥ ७१०
पल्लवौ चापरे प्राहुः पताकौ पद्मकोशकौ ।
नतोन्नतौ विश्लथौ च मणिबन्धप्रवेशयोः ।
पुरतः पार्श्वयोर्वाथ सुस्थितौ पल्लवौ मतौ ॥ ७११
इति पल्लवौ ॥ १४ ॥

*

पताकौ त्रिपताकौ वा स्पृशन्तौ पार्श्वदेशतः ।
समुत्थितौ शिरोदेशगतौ केशप्रदेशतः ॥ ७१२
पुनः पुनर्विनिष्क्रम्य नितम्बं चेत्समाश्रितौ
केशबन्धाविति प्रोक्तौ हस्तौ नृत्यविशारदैः[2] ॥ ७१३
इति केशबन्धौ ॥ १५ ॥

*

पताकौ त्रिपताकौ वा तिर्यक् प्रसृतदोलितौ ।
लताकरौ इति प्रोक्तौ नृत्यशास्त्रविशारदैः ॥ ७१४
इति लताकरौ[3] ॥ १६ ॥

*

उन्नतो दोलितश्चैव पार्श्वयोश्चेल्लताकरः ।
कर्णस्थस्त्रिपताकोऽन्यः खटकामुख एव वा ॥ ७१५
तदा करिकराकारत्वेनोक्तः करिहस्तकः ।
नन्वत्र [4]नृत्तहस्तानां लक्ष्मसाधारणे कथम् ॥ ७१६
हस्तकद्वयनिष्पाद्ये मुनिनैकत्वमास्थितम् ।
तथा कीर्तिधराचार्यैः करहस्तावितीरितम् ॥ ७१७
तथैव मुनिनात्रेव हस्तके त्वर्धरेचिते ।
विजातीयकरद्वन्द्वोत्पादितैकप्रधानके ॥ ७१८
उक्तं द्विवचनान्तत्वं तथैवात्रोपपद्यते ।
नैवं महात्मनामेषः स्वभावो यत्र कुत्रचित् ॥ ७१९

---

1 BC °प्रसारि । 2 BC विशादैः । 3 C °करो । 4 ABC वृत्त° ।

निरूपयन्ति यत् किञ्चिन्मनः किं न नपुंसकम् ।
गङ्गायमुनयोश्चापि नदीत्वं प्रतिषिध्य च[1] ॥ ७२०
स्वल्पामारोपितं यच्च तल्लीलायितचेष्टितम् ।
अतो द्विवचने प्राप्ते करद्वन्द्वैकहेतुजे ॥ ७२१
अस्मिन् करिस्मृतेर्हेतौ प्राधान्येन लताकरे ।
लीलायितेन मुनिनैकत्वमत्रोपदर्शितम् ॥ ७२२
भट्टाभिनवगुप्तैश्च तदाशयवशानुगैः ।
एकैकस्य करस्यात्र पृथक्त्वेन प्रयोगतः ॥ ७२३
करिहस्तत्वमुचितमुदितं [2]तन्मतं यथा ।
करिकर्णाकृतेस्त्वेकः परः करिकराकृतिः ॥ ७२४
करस्तदानयोर्योगे द्वित्वोक्तिस्तत्परैरथ ।
इति कर्तव्यतात्वेनाविचार्यान्यत्करस्य तु ॥ ७२५
गौणत्वं भणितं तत्तै जघिटीति यतोऽत्र च ।
समप्रधानभावो हि दृष्टः प्रकरणाग्रतः ॥ ७२६
खटकत्रिपताकान्यतरः कश्चित्करः परः ।
करहस्ताकृतिस्तस्माद् द्वन्द्वत्वान्न द्विता कथम् ॥ ७२७
अत्राकृतिप्रधानत्वे कविनैकत्वमास्थितम् ।
क्रियाप्राधान्यतोऽन्येषु युक्तं द्विवचनं स्थितम् ॥ ७२८
अतो यदेकवचनं तदाचार्यस्य शंसितुम् ।
सर्वातिशायितां लोकमध्य इत्येव सुस्थितम् ॥ ७२९

इति करिहस्तः[3] ॥ १७ ॥

*

त्रिपताकौ कटीशीर्षे न्यस्ताग्रौ पक्षवञ्चितौ ॥ ७३०

इति पक्षवञ्चितौ ॥ १८ ॥

*

एतावेव यदा पार्श्वाभिमुखाग्रौ व्यवस्थितौ ।
पक्षप्रद्योतकौ ज्ञेयावुत्तानौ वा तदाकरौ ।
केचिदूर्ध्वांगुलीकौ तौ पराङ्वक्रौ[4] प्रचक्षते[5] ॥ ७३१

इति पक्षप्रद्योतकौ ॥ १९ ॥

*

हंसपक्षे गते पार्श्वादुपवक्षः[6]स्थलं शनैः ।

---

1 BC drop च । 2 BC °दितन्म° । 3 ABC °हस्तः । 4 ABC वरान्वक्रौ; cf °तूर्ध्वांगुली च पराङ्मुखौ । सं. र. अ. ७ श्लो. २५६ । 5 ABC प्रचक्ष्यते । 6 ABC °वक्षस्थले ।

सविलासं तथा हस्ते[1] तिर्यक् संप्रसृते क्रमात् ।
युगपद्वा तदा दण्डपक्षौ हस्तौ प्रकीर्तितौ ॥ ७३२

इति दण्डपक्षौ ॥ २० ॥

*

पताकौ त्रिपताकौ वा तिर्यगूर्ध्वं कृतौ करौ ।
प्रागधोग्रौ कटिक्षेत्रे स्थितौ न्यक्कृतकूर्परौ ।
हस्तौ गरुडपक्षौ तौ गरुडेशगणोदितौ ॥ ७३३

॥ इति गरुडपक्षौ ॥ २१ ॥

*

अरालौ हंसपक्षौ वा वक्षोदेशाल्ललाटगौ ।
तत्रस्थावप्य(?स्थौ प्राप्य) वा भालपार्श्वयोः समुपागतौ ॥ ७३४
मण्डलावृत्तिवितता उर्ध्वमण्डलिनौ करौ ।
ललाटप्राप्तिपर्यन्तं भ्रमणं केचिदूचिरे ।
चक्रवर्तनिका[2] संज्ञावेतौ[3] नृत्यविदां मते ॥ ७३५

॥ इत्यूर्ध्वमण्डलिनौ[4] ॥ २२ ॥

*

तावेव पार्श्वविन्यस्तौ [5] पताकाकारमागतौ ।
अन्योन्याभिमुखौ सन्तौ पार्श्वमण्डलिनौ मतौ ॥ ७३६
आविद्धभ्रामितभुजौ केचिदाहुः स्वपार्श्वयोः ।
कक्षावर्तनिकेऽन्ये तौ नृत्यज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ७३७

इति पार्श्वमण्डलिनौ ॥ २३ ॥

*

हंसपक्षावरालौ वा हृदयक्षेत्रमागतौ ।
युगपत्करणे कृत्वोद्वेष्टितं वापवेष्टितम् ॥ ७३८
वक्षसः स्वस्वपार्श्वस्थौ भ्रान्त्वा मण्डलवत् क्रमात् ।
वक्षःस्थौ वा क्रमादेतौ उरोमण्डलिनौ मतौ ।
उरोवर्तनिके त्वेतौ नृत्यविद्भिः प्रकीर्तितौ ॥ ७३९

इत्युरोमण्डलिनौ ॥ २४ ॥

*

अभ्यासात् युगपद्वेति वक्षस्युत्तानितः करः ।
एकोऽन्यः प्रसृतः पार्श्वे तयोर्वक्षःस्थितः करः ॥ ७४०
व्यावर्तितेनालपद्मीभवन् पार्श्वं व्रजन् करः ।
मण्डलाकृतिरन्यश्चोद्वे[ष्टि]तेन प्रसारितः ॥ ७४१

---

1 BC हस्तति° । 2 ABC °वर्तिनका । 3 ABC एतोनृ° । 4 ABC °लिगौ । 5 ABC पताकार° ।

स्वपार्श्वेऽरालतां प्राप्तो हृदयमण्डलाकृतिः ।
प्राप्नुयादिति संप्रो[1]क्तावुरःपार्श्वार्द्धमण्डलौ ॥ ७४२

इत्युरः[2]पार्श्वार्धमण्डलौ ॥ २५ ॥

*

विधाय क्रमतो हस्तावरालमरपल्लवौ[3] ।
रेचितः स्वस्तिकाकारौ क्रिये[ते] खटकामुखौ ॥ ७४३
अथवा शिखरौ मुष्टी कपित्थौ वा मुहुर्मुहुः ।
स्वस्तिकाकृतितां नीतौ मुष्टिकस्वस्तिकौ करौ ॥ ७४४

इति मुष्टिकस्वस्तिकौ ॥ २६ ॥

*

व्यावर्तनक्रियोपेतावश्लिष्टस्वस्तिकौ करौ ।
मिथः पराङ्मुखीभूय यौ गतौ पद्मकोशताम् ॥ ७४५
नलिनीपद्मकोशौ तौ केचिल्लक्ष्मान्यथाजगुः ।
अन्योन्याभिमुखौ श्लिष्टमणिबन्धौ पृथग् यदा ॥ ७४६
पद्मकोशौ प्रकुर्वीत व्यावृत्तपरिवर्तने ।
नलिनीपद्मकोशौ तावथवा पद्मकोशयोः ॥ ७४७
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यामुपजानुगतेरिमौ ।
यद्वा विवर्तितौ पद्मकोशौ स्यातामिमौ पुनः ।
स्कन्धयोः स्तनयोः पार्श्वे जानुनोरपि तत्त्वतः ॥ ७४८

इति नलिनीपद्मकोशौ ॥ २७ ॥

*

उद्वेष्टितक्रियौ वक्षोदेशस्थावलपल्लवौ ।
ततः स्कन्धान्तिकं प्राप्य प्रस्थितावलपद्मकौ ॥ ७४९

॥ इत्यलपद्मौ ॥ २८ ॥

*

ऊर्ध्वप्रसारितौ स्कन्धाभिमुखौ चलदङ्गुली ।
विवृत्तावलपद्मौ चावुल्वणौ भणितौ प्लुतौ ॥ ७५०

इत्युल्वणौ ॥ २९ ॥

*

लताख्यौ वलितौ ज्ञेयौ स्वस्तिकीकृतकूर्परौ ।
अथ मूर्ध्नि विवृत्तौ तौ मुष्टिकस्वस्तिकौ मतौ ॥ ७५१
अथवाऽन्योन्यलग्नाग्रावूर्ध्वगौ नम्रकूर्परौ ।
पृष्ठतः खटकावक्त्रौ वलितौ गदितौ करौ ॥ ७५२

इति वलितौ ॥ ३० ॥

*

1 ABC °प्राक्तो । 2 ABC उत्तर । 3 ABC °ल्लवां ।

वलितौ पल्लवौ चापि शीर्षणि ललितं विदुः ।
अपरे चातुरस्रेण शिरःस्थावचलौ विदुः ॥ ७८३
अपरे खटकावक्रौ शिरः प्राप्य शनैः शनैः ।
अन्योऽन्यस्य विलग्नाग्रौ ललितौ संचचक्षिरे ॥ ७८४

इति ललितौ ॥ ३१ ॥

*

वामदक्षिणभागस्थौ वरदाभयदौ करौ ।
आरालौ कटिपार्श्वस्थौ कथितौ वरदाभयौ ॥ ७८५

इति वरदाभयौ ॥ ३२ ॥

*

द्वात्रिंशदेते संप्रोक्ताः समासात् नृत्यहस्तकाः ।
एते नृत्ये क्रमेणापि प्रयोज्या इति संमतिः ॥ ७८६
व्युत्क्रमेण प्रयोगेऽपि न दोषो मुनिशासनात् ।
अशीतिर्मिलिताः सर्वे त्रिविधा अपि हस्तकाः ॥ ७८७
इह कश्चिद्विपश्चिद्यन्निश्चिनोति करानिह ।
चतुःषष्टिमितां(? °तान्)तन्नो विचारपदवीमियात् ॥ ७८८
यतो नाटीकते मानं मुनिमार्गात्परिच्युतम् ।
तथा हि भरताचार्यैः सप्तषष्टिरुदीरिताः ॥ ७८९
तन्मता सप्तषष्टिस्तान् रत्नाकरकृदभ्यधात् ।
तन्मतस्यापकर्षेण चतुःषष्टिमिताः परैः ॥ ७९०
उक्ता गवेष्यमाणे[1]यं तद्वाचोयुक्तिजम्बुकी ।
विचारसिंहभूते[2]व न [3]तिष्ठति पदात्पदम् ॥ ७९१
तथा हि योक्ता युक्त्युत्था विशेषणविशेष्यता ।
करयोर्विप्रकीर्णाद्या न तदा[4]चार्यसंमतम् ॥ ७९२
यतः[कर]पृथक्त्वे[5]न तेषामुद्देशलक्ष्मणी ।
मुनिनैव कृते तन्नो सुवचं यददो यथा ॥ ७९३
नीलमुत्पलमित्येष दृष्टान्तो विषमः खलु ।
यतोऽत्रायुतसंबन्धः प्रायो गुणिगुणाश्रयः ॥ ७९४
द्रव्ययोस्तत्र संबन्धो युतसिद्धः स्मृतो बुधैः ।
अन्योन्यनिरपेक्षेषु स्वस्तिकाद्येषु कथ्यताम् ॥ ७९५
मल्लयोरिव कौ स्यातां कयोस्तत्र विशेषणम् ।
भिन्नगामित्वमनयोर्न समानमिहेष्यते ॥ ७९६

---

1 ABC °वेक्ष° । 2 BC °सिंभूते° । 3 BC भिष्टति । 4 BC °दावायस° । 5 ABC पृक्त्वेन ।

विशेष्यं नानुयात्यन्यमनुयाति विशेषणम् ।
यथोत्पलं तदेवापि रक्तादिगुणयोगतः ॥ ७६७
विशेष्यते तथा नीलं न क्वचिद्दृश्यते बुधैः[1] ।
एकादशविकारेऽपि यदि ते स्यादनन्यता ॥[2] ७६८
न भेदः कल्प्यतां विद्वन् पताकत्रिपताकयोः ।
क्वचित्किंचिदभेदेऽपि[3] हस्तकानां परस्परम् ॥ ७६९
ऐक्यादामूलमैक्ये तु तव स्यादेकहस्तकः ।
तस्माच्चतुःषष्टिरिति संतोष्टव्यं विपश्चिता ॥ ७७०
सप्तषष्टिरितीयं या संख्याचार्यैः प्रदर्शिता ।
नैव सा नियता यस्मान्नादृष्टार्थाय हस्तकाः ॥ ७७१
किं तु दृष्टार्थसंपत्त्यै लोकयुक्तिमवेक्ष्य च ।
यथाक्षोभं प्रकल्प्याः स्यू रसानुगतिकाः कराः ॥ ७७२
प्रयोगः पूर्वमेवोक्तः परिभाषापरीक्षणे ।
अभिनेयवशादेते सर्वेऽभिनयहस्तकाः ॥ ७७३

*

त्रिविधा अपि विज्ञेया नृत्ययुक्ता युतादिकाः ।
आनन्त्यादभिनेयानां सन्त्यनन्ताश्च ते यथा ।
अञ्जनश्चन्द्रकान्तश्च जयन्तश्चेति नामभिः ॥ ७७४

*

ललितं वक्षसः क्षेत्रे कपोतं कर्णदेशगम् ।
संदंशविधिनैवं स्यादञ्जनो नाम हस्तकः ॥ ७७५

॥ इत्यञ्जनः ॥ १ ॥

*

अर्धचन्द्रं करं कृत्वा ततो मकरमाचरेत् ।
शुकास्यं दण्डपक्षौ च जानुदेशललाटयोः ।
चतुर्भिर्हस्तकैः प्रोक्तश्चन्द्रकान्ताभिधः करः ॥ ७७६

॥ इति चन्द्रकान्तः ॥ २ ॥

*

वामे विधाय मकरं दक्षिणे वार्धचन्द्रकम् ।
भ्रामयित्वा समं कुर्यात् पताकं दक्षपार्श्वगम् ।
त्रिपताकं तथा स्कन्धे जयन्तो हस्तको भवेत् ॥ ७७७

॥ इति जयन्तः ॥ ३ ॥

*

1 ABC बुधः । 2 ABC °तां । 3 ABC °दलोदपि° ।

एवमन्येऽपि विज्ञेयाः स्वबुद्ध्या नृत्यकोविदैः ॥ ७७८

॥ इति हस्तप्रकरणम् ॥

*

[अथ वक्षः ।]

पञ्चधा सममाभुग्नं निर्भुग्नं च प्रकम्पितम् ।
उद्वाहितं च विज्ञेयं [1]वक्षस्तल्लक्ष्म कथ्यते ॥ ७७९

*

ससौष्ठवं समं ज्ञेयं चतुरस्राङ्गसंश्रयम् ।
प्रकृतिस्थमिदं वक्षः स्वभावाभिनये मतम् ॥ ७८०

॥ इति समम् ॥ १ ॥

*

आभुग्नं शिथिलं निम्नं वक्षः स्याद्गर्वशोकयोः ।
व्याधौ विषादे मूर्च्छाभीलज्जादौ संभ्रमेऽपि च ।
शीतहृच्छल्ययोश्चैव संप्रोक्तं भरतादिभिः ॥ ७८१

॥ इत्याभुग्नम् ॥ २ ॥

*

निम्नपृष्ठं च निर्भुग्नं बन्धुरं [2]स्तब्धमप्युरः ।
गर्वोत्सेके प्रहर्षोक्तौ स्तम्भे [3]विस्मयवीक्षणे ।
सत्यवाक्ये तथा माने प्रयोज्यं नृत्यकोविदैः ॥ ७८२

॥ इति निर्भुग्नम् ॥ ३ ॥

*

अजस्रमूर्द्ध्वमुत्क्षेपैः कम्पितं यत्प्रकम्पितम् ।
कामहासश्रमश्वासहिक्का[4]दौ रोदनेऽपि च ॥ ७८३

॥ इति प्रकम्पितम् ॥ ४ ॥

*

सरलोत्क्षिप्तमाकम्पयुक्तमुद्वाहितं मतम् ।
उत्तुङ्गालोकने जृम्भा[5]दीर्घोच्छ्वासादिके तथा ॥ ७८४

॥ इत्युद्वाहितम् ॥ ५ ॥

॥ इति पञ्चधा वक्षः ॥

*

[अथ स्तनौ ।]

उच्चावापाण्डुरौ श्यामौ मनापी(?सुपीनौ)लोलितौ[6] मनाक् ।
सङ्कुचद्वदनौ[7] चेति स्तनौ[तु] षट्[8]प्रकीर्तितौ ।
एतौ रसेषु भावेषु यथौचित्यं प्रयोजयेत् ॥ ७८५

*

---

1 B वक्ष्य; C वक्ष्यमूल्ल । 2 BC बन्धुरस्त° । 3 BC स्तम्भविस्मय° । 4 BC °हिष्का° । 5 BC जृभा । 6 ABC श्यामामनापीलोलतौ । 7 ABC °दनो । 8 ABC षोद् ।

[अथ पार्श्वम् ।]

उन्नतं च नतं चैव प्रसारितविवर्तिते ।
तथापसृतमित्युक्तं पार्श्वं[1] पञ्चविधं बुधैः ॥ ७८६

*

नितम्बां[2]सभुजैर्व्यक्तमुन्नतैरुन्नतं मतम् ।
नियोज्यं नाटके तज्ज्ञैरपसर्पणकर्मणि ॥ ७८७

॥ इति उन्नतम् ॥ १ ॥

*

नतबाहुनितम्बांसं नतं स्यादुपसर्पणे ॥ ७८८

॥ इति नतम् ॥ २ ॥

*

प्रसारितं तूभयतो [3]विस्तारात् स्यान्मुदादिषु ॥ ७८९

॥ इति प्रसारितम् ॥ ३ ॥

*

विवर्तिकत्रिकं पार्श्वं विवर्तितं [4]विवर्तनात् ॥ ७९०

॥ इति विवर्तितम् ॥ ४ ॥

*

भवेदपसृतं पार्श्वं विवर्तितविवर्तनात् ।
निवर्तने प्रयोगोऽस्य नृत्यविद्भिश्चिकीर्षितः ।
प्रयोज्यमेतन्नाट्ये तु परावृत्तौ नटस्य तु ॥ ७९१

॥ इत्यपसृतम् ॥ ५ ॥

॥ इति पञ्चविधं पार्श्वम् ॥

*

[अथ कटी ।]

कटी पञ्चविधा प्रोक्ता विवृत्तो[5]द्वाहिता तथा ।
छिन्ना च कम्पिता चेति रेचितेत्यथ[6] लक्षणम् ॥ ७९२

*

विदधाति कटीं यां तु नृत्यगः प्रत्यगाननः ।
विवर्त्तितामभिमुखीं विवृत्ता[7] सा विवर्तने ॥ ७९३

॥ इति विवृत्ता ॥ १ ॥

*

---

1 BC पार्श्वा । 2 ABC नितंबोंस° । 3 ABC °स्तारास्यान्मदादिषु । cf सं. र. अ. ७ श्लो. ३०५ प्रसारितं तूभयतो विस्तारात् स्यान्मुदादिषु । cf च Ms स्तारे स्यान्मु° (A. s-s) Compare also ना. शा. (C s-s) अ. १०, श्लो. १४ आयामनादुभयतः पार्श्वयोः स्यात् प्रसारितम् । and श्लो. १६ प्रसारितं प्रहर्षादौ । 4 ABC °र्तितवि° । 5 ABC °त्तेद्वा° । 6 ABC त्यतल° । 7 ABC विवर्ता ।

सोद्वाहिता कटी ज्ञेया शनैः पार्श्वद्वयेन या ।
चलता शोभने स्त्रीणां पीनाङ्गानां गताविव ॥ ७९४

॥ इत्युद्वाहिता ॥ २ ॥

*

मध्यस्य वलनाच्छिन्ना पात्रे तिर्यङ्मुखे कटी ।
व्यावृत्तप्रेक्षणे चैषा व्यायामे संभ्रमे तथा ॥ ७९५

॥ इति छिन्ना ॥ ३ ॥

*

शीघ्रं गतागतैर्युक्ता पार्श्वयोः कम्पिता कटी ।
खञ्जवामनकुब्जानां गमने सा प्रयुज्यते ॥ ७९६

॥ इति कम्पिता ॥ ४ ॥

*

सर्वदिक्षु भ्रमणतो रेचिता भ्रमणे कटी ॥ ७९७

॥ इति रेचिता ॥ ५ ॥

॥ इति कटी ॥

*

[अथ चरणः ।]

समोऽञ्चि[1]तः कुञ्चितश्च सूच्यग्रतलसञ्चरः ।
उद्धट्टितस्त्राटितश्च घटितोत्सेधसंज्ञिकः ॥ ७९८
घट्टितो मर्दितश्च स्यादग्रगः पार्ष्णिगस्तथा ।
[2]पार्श्वगश्चरणो ज्ञेयस्त्रयोदशविधः स्फुटः ॥ ७९९

*

समः स्वभावाभिनये स्वभावावस्थितो भवेत् ।
चलोऽसौ रेचके प्रोक्तः स्वभावे च स्थिरो मतः ॥ ८००

॥ इति समः ॥ १ ॥

*

अङ्गुल्यः प्रसृता यस्य पार्ष्णिभूमौ व्यवस्थितः ।
उत्क्षिप्ताग्र[3]तलश्चैव चरणोऽञ्चि[4]तसंज्ञितः ।
पादाहतिविधौ स स्यान्नानाभ्रमरिकादिषु ॥ ८०१

॥ इत्यञ्चितः ॥ २ ॥

*

---

1 BC °मोचितः । 2 ABC पष्वगः । cf सं. र. अ. ७ श्लो. ३१४ पार्श्वगः । 3 ABC °क्षिप्तातल° । cf सं. र. अ. ७ श्लो. ३१६ समुत्क्षिप्ताग्रतलः । 4 ABC °णोवितसं ।

आकुञ्च्य मध्ये[1] तूत्क्षिप्तपार्ष्णिः सङ्कुचिताङ्गुलिः ।
कुञ्चितोऽयमतिक्रान्तक्रमे तुङ्गस्य च ग्रहे ॥ ८०२

॥ इति कुञ्चितः ॥ ३ ॥

*

वामः समः परः पृथ्व्यामङ्गुष्ठाग्रेण संस्थितः ।
उत्क्षिप्तेतरभागोऽसौ सूची नूपुरबन्धने ॥ ८०३

॥ इति सूची ॥ ४ ॥

*

अङ्गुष्ठः प्रसृतो यस्याङ्गुल्यस्तु न्यञ्चितास्तथा ।
उत्क्षिप्ता तु भवेत् पार्ष्णिः पादोऽग्रतलसञ्चरः ॥ ८०४
रेचके भ्रमणे भूमिताडने स्थानपीडने ।
कुट्टने प्रेरणे भूमिस्थितस्य चाप[2]सारणे ॥ ८०५

॥ इत्यग्रतलसञ्चरः ॥ ५ ॥

*

स्थित्वा पादाग्रतो भूम्यां सकृद्वा बहुशोऽपि वा ।
पार्ष्णिर्निपात्यते स स्यात् पाद उद्घट्टिताभिधः ॥ ८०६

॥ इत्युद्घट्टितः ॥ ६ ॥

*

आपीड्य पार्ष्णिना पृथ्वीं तामेवाग्रेण हन्ति यः ।
त्राटितः चरणः स स्यात् कर्तव्यः क्रोधगर्वयोः ॥ ८०७

॥ इति त्राटितः ॥ ७ ॥

*

घट्टयन्नग्रपार्ष्णिभ्यां क्रमादुर्वीं मुहुर्मुहुः ।
ताडने विनियुक्तोऽयं घटितोत्सेधकारकः ॥ ८०८

॥ इति घटितोत्सेधः ॥ ८ ॥

*

घट्टयन् पार्ष्णिना भूमिं घट्टितः स्वल्पनोदने ।

॥ इति घट्टितः ॥ ९ ॥

*

तिरश्चीनतलेनोर्वीं मर्दयन् मर्दितो भवेत् ॥ ८०९

॥ इति मर्दितः ॥ १० ॥

*

---

1 B मध्ये मुत्क्षि° A मध्ये मुतक्षि° C मध्ये युत्क्षि° The correct reading may also be मध्ययुत्क्षि° । 2 ABC °स्थापयसारणे ।

पङ्क्तिलोर्थ्यामग्रगः स्यादग्रतः शीघ्रगत्वरः।

॥ इत्यग्रगः ॥ ११ ॥

*

पार्ष्णिना पृष्ठतो गच्छन् चरणः पार्ष्णिगो मतः।

॥ इति पार्ष्णिगः ॥ १२ ॥

*

पार्श्वे गच्छन् पार्श्वगः स्यादथवा पार्श्वतः स्थितः ॥ ८१०

॥ इति पार्श्वगः ॥ १३ ॥

॥ इति त्रयोदश चरणाः ॥

*

येनाम्नायः षडङ्गः प्रकटित इतिकर्तव्यतासंयुतोऽद्धा
येनोच्चैः स्वामिनाप्तं[1] निजगुणनिभृतं स्वीयराज्यं षडङ्गम्।
यो नित्यं शम्भुजायां त्रिभुवनमहितां[2] न्यस्यति[3] स्वां ष[4]डङ्गे
तेनायं लक्षणोक्तो व्यरचि नृपतिना[5] नृत्यवर्गः[6] षडङ्गः ॥ ८११

इति [7]श्रीराजाधिराज–श्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते संगीतराजे षोडशसाहस्र्यां संगीतमीमांसायां नृत्य[रत्न]कोशे अङ्गोल्लासे अङ्गपरीक्षणं प्रथमं समाप्तम् ॥

प्रथमोल्लासे द्वितीयं परीक्षणम्।

[प्रत्यङ्गानि]

अथ प्रत्यङ्ग[8]संपन्नः प्रत्यङ्गानां समुच्चयम्।
प्रत्यङ्गीकृतभूपालो वक्ति [9]लक्षणपूर्वकम् ॥ १
प्रत्यङ्गानि स्कन्धौ ग्रीवा बाहू च पृष्ठमुदरं च।
ऊरू जङ्घे चान्यौ मणिबन्धौ जानुनी चैव ॥ २

[स्कन्धौ]

लोलितावुच्छ्रितौ स्रस्तावेकोच्चौ कर्णलग्नकौ।
नाम्नैव व्यक्तलक्ष्माणौ स्कन्धौ पञ्चविधौ स्मृतौ ॥ ३

*

---

1 BC °नान्तं। 2 ABC नसहितां। 3 ABC न्यसति। 4 BC षडङ्ग। 5 BC नृपपत्तिना। 6 ABC नृत्यवर्गषडङ्गः। 7 A drops समाप्तं। C in a different hand इति श्रीराजाधिराजकालसेन महीमहेन्द्रेण विरचिते संगीतराजे षोडशसाहस्र्यां संगीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे अंगोल्लासे अंगपरीक्षणं प्रथमं समाप्तम् ॥ शुभं भवतु ॥ B drops from इति to प्रथमम्; but between ठ and अथ enough space is left for the unwritten part of the colophon. 8 BC प्रत्यं। 9 BC लक्षपूर्वकम्।

नियुक्तौ लोलितौ तत्र हुडुक्कावाद्य[1]वादने।
हास्ये विटकृते नृत्ये,

॥ इति लोलितौ ॥ १ ॥

उच्छ्रितौ हर्षगर्वयोः ॥ ४

॥ इति उच्छ्रितौ ॥ २ ॥

*

मदे दुःखे श्रमे स्रस्तौ,

॥ इति स्रस्तौ ॥ ३ ॥

*

एकोचौ मुष्टिकुन्तयोः। प्रहारे;

॥ इति एकोचौ ॥ ४ ॥

*

कर्णलग्नौ स्तः, शिशिराश्लेषयोरपि ॥ ५

॥ इति कर्णलग्नौ ॥ ५ ॥

॥ इति पञ्चधा स्कन्धौ ॥ ५ ॥

*

[ग्रीवा]

समा निवृत्ता वलिता रेचिता कुञ्चिताञ्चिता।
त्र्यस्रा नतोन्नता चोक्ता ग्रीवा नवविधा [2]बुधै[ः]।
प्रकृतिस्था समा ध्याने जपे कार्ये स्वभावजे ॥ ६

॥ इति समा ॥ १ ॥

*

आभिमुख्यान्निवर्तेत या निवृत्तेति सोदिता।
स्कन्धभारे चाभिमुख्ये तथा चकितवीक्षणे ॥ ७

॥ इति निवृत्ता ॥ २ ॥

*

पार्श्वोन्मुखी तु या ग्रीवा वलिता सा निगद्यते।
ग्रीवाभङ्गे स्मृ(? कृ)तेक्षायां प्रियस्य गुरुसंनिधौ ॥ ८

॥ इति वलिता ॥ ३ ॥

*

ग्रीवोक्ता विधुतभ्राता (? न्ता) रेचिताङ्गादिमर्दने।

॥ इति रेचिता ॥ ४ ॥

*

आकुञ्चिता कुञ्चिता स्यात् शीर्षभारे स्वगोपने ॥ ९

॥ इति कुञ्चिता ॥ ५ ॥

*

---

1 BC हुडुक्कावादने। 2 A बुधे BC बुधौ।

केशाकर्षेऽर्धवीक्षायां लोलातिप्रसृताञ्चिता[1] ।

॥ इत्यञ्चिता ॥ ६ ॥

*

त्र्यस्रा स्यात्पार्श्वगा खेदे पार्श्वदृक्स्कन्धभारयोः ॥ १०

॥ इति त्र्यस्रा ॥ ७ ॥

*

अवनम्रा नता कण्ठालम्बेऽलङ्कारबन्धने ।

॥ इति नता ॥ ८ ॥

*

उन्नतोर्ध्वगतोर्ध्वावलोके कण्ठस्थदर्शने ॥ ११

॥ इत्युन्नता[2] ॥ ९ ॥

॥ इति नवधा ग्रीवा ॥

*

[बाहवः]

ऊर्ध्वास्योऽधो[3]मुखस्तिर्यगपविद्धः प्रसारितः ।
अञ्चितो मण्डलगतिः स्वस्तिकोद्वेष्टितावथ ॥ १२
पृष्ठानुसारी चाविद्धः कुञ्चितोत्सारितावपि ।
सरलान्दोलितौ नम्रे बाहुः षोडशधोदितः[4] ॥ १३

*

ऊर्ध्वं व्रजन् शिरोदेशादूर्ध्वास्यस्तुङ्गवीक्षणे ।

॥ इत्यूर्ध्वास्यः ॥ १ ॥

*

आलिङ्गन्निव भूपृष्ठमधोवक्त्र इतीरितः ।

॥ इत्यधोवक्त्रः ॥ २ ॥

*

............तिर्यक् पार्श्वोपसर्पी स्यात् ॥ १४

॥ [5]इति तिर्यक् ॥ ३ ॥

*

यो मण्डल इव भ्रान्त्या वक्षःक्षेत्राद्बहिर्व्रजेत् ।
सोऽपविद्ध इति ज्ञेयो गदायुद्धादिषु स्मृतः ॥ १५

॥ इत्यपविद्धः ॥ ४ ॥

*

अनुव्रजन्नग्रदेशं बाहुः प्रोक्तः प्रसारितः ।
विनियुक्तः फलादाने फलादेर्याचनेऽपि च ॥ १६

॥ इति प्रसारितः ॥ ५ ॥

*

---

1 BC °ताञ्च° । 2 ABC °त्युन्नता । 3 ABC °स्याधा° । 4 BC °दितं । 5 C drops from इति to °युद्धादिषु ।

वक्षोदेशाच्छिरो गत्वा वक्षःप्रत्यागतोऽश्चितः।
खेदादौ विनियुक्तोऽयं,

॥ इत्यश्चितः ॥ ६ ॥

*

सर्वतो भ्रमणाद्भुजः ॥ १ ॥ १७
उच्यते मण्डलगतिः खड्गादिभ्रामणे स तु।

॥ इति मण्डलगतिः ॥ ७ ॥

*

पार्श्वव्यत्यासतो बाह्वोः स्वस्तिकः स्यादलग्नयोः।
उपस्थाने [1]रवेः कार्यः परीरम्भेऽभिवादने ॥ १८

॥ इति स्वस्तिकः ॥ ८ ॥

*

मणिबन्धाद्विनिःसृत्य पुनर्व्यावृत्तिमाश्रितः[2]।
उद्वेष्टितो भवेद्बाहुः सर्वगर्वादनादरे ॥ १९

॥ इत्युद्वेष्टितः ॥ ९ ॥

*

पृष्ठतो गमनात् पृष्ठानुसारी बाहुरुच्यते।
तूणाद्बाणग्रहे स स्याद् वीटिकाग्रहणेऽपि च ॥ २०

॥ इति पृष्ठानुसारी ॥ १० ॥

*

आविद्धोऽभ्यन्तराक्षिप्तः,

॥ इत्याविद्धः ॥ ११ ॥

*

सूचीकुर्वंश्च कूर्परम्।
वक्रितः कुश्चितः पाते प्रहारे भोजने तथा ॥ २१
खड्गादिधारणे चास्य विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ २२

॥ इति कुश्चितः ॥ १२ ॥

*

अन्यपार्श्वान्निजं पार्श्वं व्रजन्नुत्सारितः स च।
जनतोत्सारणे प्रोक्तः.......... ॥ २३

॥ इत्युत्सारितः ॥ १३ ॥

*

सरलः पार्श्वयोरूर्ध्वमधस्ताच्च प्रसारितः।
सपक्षानुकृतौ माने भूस्थनिर्देशने[3] क्रमात् ॥ २४

॥ इति सरलः ॥ १४ ॥

*

1 BC रवः। 2 A drops तः। 3 BC repeat° शने।

आन्दोलितः स्यादन्वर्थः सविलासगतौ मतः ।

॥ इति आन्दोलितः ॥ १५ ॥

*

किंचिद्वक्रीकृतो नम्रः स्तुतौ माल्यस्य धारणे ॥ २५

॥ इति नम्रः ॥ १६ ॥

*

एतेषां विनियोगस्तु परिभाषापरीक्षणे ।
उक्तः क्ष्मापालनाथेन तत एव गवेष्यताम् ॥ २६

॥ इति बाहवः ॥

*

[वर्तना ।]

अथ वर्तना-संगीतरत्नाकरटीकायाः कलानिधेर्मध्यात्

सामस्त्यव्यासयोगैः करकरणमिलद्बाहुसंयोजनैर्या-
जायन्तेऽसंख्यरूपाः क्रमत इह रसोल्लासिवैचित्र्यतश्च ।
आवर्त्यावर्तनाम्ना रसमनुरुचिरा स्वे(? स्तेन) लास्यानुरूपा-
स्ताभिर्नृत्यप्रपञ्चास्त्वभिनयचतुराः पाणयोऽनेकशः स्युः ॥ २७
पताकारालयोः पूर्वं शुकतुण्डालपद्मयोः ।
वर्तना खे(? ख)टकस्यापि पश्चान्म[1]करवर्तना ॥ २८
उद्व(? ऊर्ध्व)वर्तनिकाविद्धवर्तना रेचिताह्वया ।
नितम्बकेशबन्धाख्ये फल्गुवर्तनिका ततः ॥ २९
कक्षावर्तनिकोरस्थे (? स्थ)वर्तना खड्गवर्तना ।
पद्मवर्तनिका दण्डवर्तना पल्लवाभिधा ॥ ३०
वलिता मात्रपूर्वा च वर्तना परिवर्तना ।
चतुर्विंशतिरित्युक्ता वर्तना भट्टतण्डुना ॥ ३१

अथ क्रमाल्लक्षणमुच्यते–

सव्यापसव्यव्यत्यासाक्रान्तिरामणिबन्धतः ।
क्रियते चेत् पताकस्य सा पताकाख्यवर्तना ॥ ३२

॥ इति पताकावर्तना ॥ १ ॥

*

तर्जन्याद्यङ्गुलीनां यदन्तरोद्वेष्टनं क्रमात् ।
आवेष्टितक्रियापूर्वं सा प्रोक्तारालवर्तना ॥ ३३

॥ इत्यरालवर्तना ॥ २ ॥

*

---

1 BC drop क ।

शुकतुण्डकरो वक्षःस्थाविद्धोऽधोमुखः कृतः ।
ऊरुपृष्ठे वर्तितश्चेच्छुकतुण्डाख्यवर्तना ॥ ३४

॥ इति शुकतुण्डाख्यवर्तना ॥ ३ ॥

*

अभ्यन्तरे कनिष्ठाद्या वर्तन्तेऽङ्गुलयः क्रमात् ।
व्यावृत्तिक्रियया यत्र साऽलपल्लववर्तना ॥ ३५

॥ इत्यलपल्लववर्तना ॥ ४ ॥

*

खटकामुखयोर्नाभिक्षेत्रे सव्यापसव्यतः ।
मणिबन्धावधिभ्रान्तिः खटकामुखवर्तना ॥ ३६

॥ इति खटकामुखवर्तना ॥ ५ ॥

*

यदा तु मकरो हस्तः पुरस्तात्पार्श्वयोरपि ।
व्यावर्तते बहिश्चान्त्यस्तदा मकरवर्तना ॥ ३७

॥ इति मकरवर्तना ॥ ६ ॥

*

ग(? य)दोद्धृतौ नृत्यहस्तावूर्ध्वदेशे तु वर्तितौ ।
तदोर्ध्ववर्तना नाम वर्तनाविद्भिरीरिता ॥ ३८

॥ इत्यूर्ध्ववर्तनिका ॥ ७ ॥

*

अथापविद्धवत् पाणी वर्तेते[1] चेद्भुजौ क्रमात् ।
आविद्धावन्तराक्षिप्तौ सा स्यादाविद्धवर्तना ॥ ३९

॥ इत्याविद्धवर्तना ॥ ८ ॥

*

स्वस्तिकाद्विच्युतौ हस्तौ हंसपक्षौ द्रुतभ्रमौ ।
रेचितौ चेद्वर्तनाभ्यां तदा रेचितवर्तना ॥ ४०

॥ इति रेचितवर्तना ॥ ९ ॥

*

मणिबन्धावधिभ्रान्तौ विश्लिष्टाङ्गुलिपल्लवौ ।
नितम्बोक्तप्रकारेण वर्तितौ स्कन्धदेशयोः ॥ ४१
पुनर्नितम्बदेशे तु पताकौ वर्तितौ क्रमात् ।
नितम्बवर्तना नाम ॥ ४२

॥ इति नितम्बवर्तना ॥ १० ॥

*

1 ABC वर्तते । cf आविद्धवक्रयोः पाण्योर्वर्तेते चेद्भुजौ क्रमात् Kallinātha सं. रं. अ. ७ श्लो. ३४९ कलानिधि पृ. १०७ ।

केशबन्धे प्रकीर्तिता ।
विचित्रवर्तनायोगात् केशदेशाद्विनिर्गतौ ।
पुनश्च केशदेशे च पर्यायेण विवर्तितौ ।
पताकावेव चेत् सा तु केशबन्धाख्यवर्तना ॥ ४३
॥ इति केशबन्धवर्तना ॥ ११ ॥

*

व्यावृत्त्या वक्षसो भालं प्राप्य तत्पार्श्वमागतौ ।
ततो मण्डलवक्रान्त्या प्रचालितभुजौ करौ ॥ ४४
पताकौ चेद्भ्रमेदूर्ध्वमण्डलावेव कोविदैः ।
चक्रवर्तनिकेत्युक्ता फल्गु(? फाल)वर्तनिकापि च ॥ ४५
॥ इति फल्गु(? फाल)वर्तनिका ॥ १२ ॥

*

पार्श्वमण्डलिनोः पाण्योर्भ्रमणं स्वस्वपार्श्वयोः ।
क्रमादकैकपार्श्वेव कक्षवर्तनिकां जगुः ॥ ४६
॥ इति कक्षावर्तना ॥ १३ ॥

*

उरोवर्तनिकां विद्यादुरोमण्डलिनोः क्रियाम् ।
॥ इत्युरोवर्तनिका ॥ १४ ॥

*

एकः स्यात् कुञ्चितो मुष्टि[ः]खटकास्योऽञ्चितः पुरा(परः)[1] । ४७
इति कीर्तिधरस्त्वाह मुष्टिकस्वस्तिकौ करौ ।
खड्गवर्तनिकेत्येतन्नामधेयं त्वकल्पयत् ॥ ४८
॥ इति खड्गवर्तनिका ॥ १५ ॥

*

पद्मकोशाभिधौ हस्तौ व्यावृत्त्यादिक्रियाश्रितौ ।
आश्लिष्टौ स्वस्तिकक्षेत्रे व्यावृत्तिपरिवर्तितौ ॥ ४९
मिथः पराङ्मुखौ सन्तौ नलिनीपद्मकोशकौ ।
एतौ कीर्तिधराचार्याः पद्मवर्तनिकां जगुः ॥ ५०
यद्वा–
स्वस्तिकौ कुञ्चितौ हस्तौ व्यावृत्तिपरिवर्तितौ ।
मिथः पराङ्मुखौ बद्धौ सैषा कमलवर्तना ॥ ५१
॥ इति पद्मवर्तना ॥ १६ ॥

*

1 cf एकस्याकुञ्चितो मुष्टिः खटकास्योऽञ्चितः परः । कलानिधि on सं. र. अ. ७ श्लो. ३४९ पृ. १०८ ।

वक्षःक्षेत्रं श्रय[1]त्येको येन कालेन पार्श्वतः ।
व्यावृत्त्या हंसपक्षाख्यस्तेनैव परिवर्तितः ॥ ५२
प्रसारितभुजोऽन्यस्तु तिर्यक् पर्यायतः पुनः ।
एवमङ्गान्तरेणापि क्रिया स्याद्दण्डपक्षयोः ।
दण्डवर्तनिकामेनां भट्टतण्डुरभाषत ॥ ५३

॥ इति दण्डवर्तना ॥ १७ ॥

*

पताकौ मणिबन्धस्थौ शिथिलौ स्वस्तिकौ पुनः ।
कथितौ पल्लवौ तौ हि ख्याता पल्लववर्तना ॥ ५४

॥ इति पल्लववर्तना ॥ १८ ॥

*

व्यावर्तितेन हस्तश्चेदलपल्लवशंसिना ।
स्वपार्श्वं वक्षसः प्राप्य प्रसारितभुजो भ्रमात् ॥ ५५
अरालं दधदन्येन करणेन श्रयेत् परः ।
तदानीमेव पार्श्वं स्वमन्यो गच्छति पूर्ववत् ॥ ५६
मण्डलेन ततोऽप्येव पुरः पार्श्वोर्द्ध्वमण्डलौ ।
तथा तेषां क्रिया सा स्यादर्धमण्डलवर्तना ॥ ५७

॥ इत्यर्धमण्डलवर्तना ॥ १९ ॥

*

उद्वेष्टितेन निष्पन्नौ स्यातां चेदलपल्लवौ ।
वक्षसः स्कन्धयोरूर्ध्वं प्रसारितभुजावुभौ ॥ ५८
स्कन्धाभिमुखमाविद्धौ चलिताङ्गुलिवीजनैः ।
अलपद्माभिधौ [2]प्राहुर्घातवर्तनिकां[3] परे ॥ ५९

॥ इति घातवर्तनिका ॥ २० ॥

*

एतावेवाचलौ मूर्धक्षेत्रगौ ललिता मता ।
खटकास्यौ शिरोदेशे लग्नाग्रौ तां परे जगुः ॥ ६०

॥ इति ललितवर्तना ॥ २१ ॥

*

कूर्परस्वस्तिकाकारवर्तनाद्वलिता मता ।
अन्ये व्याचक्षतेऽन्योन्यलग्नाग्रौ खटकामुखौ ।
ऊर्ध्वगौ पृष्ठमानीतकूर्परौ वलितेति च ॥ ६१

॥ इति वलितवर्तना ॥ २२ ॥

*

1 ABC °यंत्ये° । 2 ABC प्राह vide सं. र. अ. ७ श्लो. ३४९ पृ. १०९ । 3 ABC का प° vide ibid.

व्यावर्तितोऽन्तर्गात्रं चेदलपल्लवहस्तकः ।
पराङ्मुखोऽपविद्धः स्यात् कथिता गात्रवर्तिता ॥ ६२

॥ इति गात्रवर्तिता ॥ २३ ॥

*

गात्रस्य प्रातिलोम्येन पाणिरुत्क्षिप्य वर्तते ।
अल्लपल्लवसंज्ञश्चेत् प्रतिवर्तनिका तदा ॥ ६३

॥ इति प्रतिवर्तनिका ॥ २४ ॥

*

अन्याश्च कथिताः सप्त वर्तना नृत्यवेदिभिः ।
वर्तना शिखरस्याद्या द्वितीया [1]तिलकस्य च ॥ ६४
वर्तना नागबन्धः स्यात् सा सिंहमुखवर्तना ।
वैष्णव्येका तलमुखी सप्त स्युः[2] कलशाभिधा ।
नाममात्रप्रसिद्धास्तास्तैरेव स्युर्न(? : स्फुट)[3]लक्षणाः ॥ ६५

॥ इति वर्तनाः ॥

*

[पृष्ठम् ।]

जठरं[4] सैव बोद्धव्यं पृष्ठं तु जठरानुगम् ।
अतो विमुच्य तत् पृष्ठं जठरं लक्ष्यतेऽग्रतः ॥ ६६

॥ इति पृष्ठम् ॥

*

[जठरम् ।]

पूर्णं खल्लं रिक्तपूर्णं क्षामं च जठरं स्मृतम् ।
चतुर्द्धा तत्र पूर्णं तु स्थूलमत्यशिते भवेत् ॥ ६७
व्याधिते तुन्दिले चैव ।

॥ इति पूर्णम् ॥ १ ॥

*

खल्लं निम्नं[5] समातुरे ॥

*

कर्शिते च क्षुधार्त्ते स्यादातुरे जठराकृतौ ॥ ६८
वैतालभृङ्गिरित्यादि ।

॥ इति खल्लम् ॥ २ ॥

*

1 ABC तेलक° । 2 सप्तमी क. नि. सं. र. अ. ७ श्लो. ३५० पृ. ११० । 3 cf स्फुटलक्षणाः Ibid. 4 ABC जठरो cf पृष्ठं तु जठरोक्ताभिर्वर्तनाभिर्विवर्तते । अतो न तत्पृथग्वाच्यं जठरं तूच्यतेऽधुना । सं. र. अ. ७ श्लो. ३५२ । 5 ABC निम्नंसमा° ।

रिक्तपूर्णमथोच्यते ।
श्वासरोगे;
॥ इति रिक्तपूर्णम् ॥ ३ ॥
*
तथा क्षामं नमनादुपजायते ।
जृम्भायां हास्यनिःश्वासरोदनादौ तदिष्यते ॥ ६९
॥ इति क्षामम् ॥ ४ ॥
॥ इति चतुर्द्धोदरम्[1] ॥ १ ॥
*

[ऊरुः ।]

चलितः कम्पितः स्तब्ध उद्वर्तितनिवर्तितौ ।
पञ्चधोरुस्तु वलितोऽन्तर्गते जानुनि स्मृतः ॥ ७०
नियोज्यः स्वैरगमने स्त्रीणां;
॥ इति वलितः ॥ १ ॥
कम्पित उच्यते ॥
*
नतोन्नते मुहुः पार्श्वे दधानोऽधमचङ्क्रमे ॥ ७१
॥ इति कम्पितः ॥ २ ॥
*
निष्क्रियः स्तब्ध इत्युक्तो विषादे साध्वसेऽपि सः ।
॥ इति स्तब्धः ॥ ३ ॥
*
उद्वर्तितो मुहुः पार्ष्णिं बहिरन्तश्च विक्षिपन् ।
क्षिपन् तथैवाग्रतलं व्यायामे तच्च वै भवेत् ॥ ७२
॥ इत्युद्वर्तितः ॥ ४ ॥
*
निवर्तितोऽन्तर्म(?र्ग)तया पार्ष्ण्या स्यात् संभ्रमे श्रमे ॥ ७३
॥ इति निवर्तितः ॥ ५ ॥
॥ इति पञ्चधोरुः ॥
*

[जङ्घा ।]

जङ्घा पञ्चविधा क्षिप्तोद्वाहिता परिवर्तिता ।
[आवर्तिता नता चैव निःसृता च बहिर्गता ॥ ७४
परावृत्ता तिरश्चीना कम्पितेत्यपराश्च ताः ।][2]

---

1 ABC प्रतिचतुर्द्धोदरम् । 2 Here a verse mentioning the remaining two jangha's and the additional five jangha's seems to be missing. It is reconstructed as above.

पुनः पञ्च दशैवं स्युः; क्षिप्ता विक्षेपिता बहिः । ७५
व्यायामे ताण्डवे प्रोक्तो–

॥ इति क्षिप्ता ॥ १ ॥

*

–द्वाहिता चोर्ध्वदेशयुक् ।
आविद्धगमनादौ स्यात्;

॥ इत्युद्वाहिता ॥ २ ॥

*

जङ्घा तु परिवर्तिता ।
प्रतीपगमने पुंसां ताण्डवे विनियुज्यते ॥ ७६

॥ इति परिवर्तिता ॥ ३ ॥

*

विपर्यासे चरणयोर्वामदक्षिणतः कृते ।
मुहुरावर्तिता प्रोक्ता विदूषकपरिक्रमे ॥ ७७

॥ इत्यावर्तिता ॥ ४ ॥

*

नता जङ्घा नमज्जानुर्गतस्थानासनादिषु ।

॥ इति नता ॥ ५ ॥

*

पुरःप्रसरणोपेता निःसृता परिकीर्तिता ॥ ७८

॥ इति निःसृता ॥ ६ ॥

*

नृत्ये प्रसारिता पार्श्वे जङ्घा प्रोक्ता बहिर्गता ।

॥ इति बहिर्गता ॥ ७ ॥

*

'पश्चाद् याता' परावृत्ता भूमिस्ते(?स्थे)न च जानुना ।
दक्षेण सुरकार्ये स्याद्वामेन पितृकर्मणि ॥ ७९

॥ इति परावृत्ता ॥ ८ ॥

*

क्षितिस्थितबहिःपार्श्वा तिरश्चीनासने स्थिता ।

॥ इति तिरश्चीना ॥ ९ ॥

*

कम्पिता कम्पनाद्गीतौ कार्ये घर्घरिकारवे ॥ ८०

॥ इति कम्पिता ॥ १० ॥

॥ इति दशधा जङ्घा ॥

*

1 BO पाश्चाद् । 2 A घाता BO वाता of पश्चाद्गता । सं. र. अ. ७ श्लो. ३६५ ।

[मणिबन्धः ।]

पञ्चधा मणिबन्धः स्यात् सम आकुञ्चितश्चलः ।
निकुञ्चितश्च भ्रमित ऋजुः सम इतीरितः ।
प्रतिग्रहे पुस्तकस्य धारणे परिकीर्तितः ॥ ८१

॥ इति समः ॥ १ ॥

*

आकुञ्चितोऽन्तर्निम्नः स्यात् प्रोक्तोऽपसरणे बुधैः ।

॥ इत्याकुञ्चितः ॥ २ ॥

*

निकुञ्चाकुञ्चिताभ्यासाचल आवाहने स्मृतः ॥ ८२

॥ इति चलः ॥ ३ ॥

*

बहिर्नीतो निकुञ्चः स्यात् स दानाभयदानयोः ।

॥ इति निकुञ्चः ॥ ४ ॥

*

भ्रमणाद्भ्रमितः खड्गछुरिकाभ्रमणादिषु ॥ ८३

॥ इति भ्रमितः ॥ ५ ॥

॥ इति पञ्चधा मणिबन्धः ॥

*

[अथ करभौ ।]

करभौ मलिनौ स्वच्छावरुणौ कुञ्चितावृजू ।
इत्थमन्वर्थनामानौ कथितौ पञ्चधा बुधैः ॥ ८४

॥ इति करभौ ॥

*

[जानु ।]

समं नतं च विवृतमुन्नतं चार्धकुञ्चितम् ।
संहतं कुञ्चितं चेति जानु सप्तविधं स्मृतम् ।
प्रकृतिस्थं समं जानु स्वभावावस्थितौ मतम् ॥ ८५

॥ इति समम् ॥ १ ॥

*

नतं महीगतं ज्ञेयं जानु वा(?पा)ते नमस्कृतौ ।

॥ इति नतम् ॥ २ ॥

*

जानुद्वन्द्वं बहिर्यातं विवृतं रा(?ग)जरोहणे ॥ ८६

॥ इति विवृतम् ॥ ३ ॥

*

स्तनदेशागतं जानून्नतं शैलाधिरोहणम् ।

॥ इत्युन्नतम् ॥ ४ ॥

*

जान्वर्धकुञ्चितं ज्ञेयं नितम्बनमनाद्बुधैः ॥ ८७

॥ इत्यर्धकुञ्चितम् ॥ ५ ॥

*

ह्रीरोषेर्ष्यासु जानूक्तं श्लिष्टान्यजानु संहतम् ।

॥ इति संहतम् ॥ ६ ॥

*

कुञ्चितं जानु लग्नोरुजङ्घमासनकर्मणि ॥ ८८

॥ इति कुञ्चितम् ॥ ७ ॥

॥ इति सप्तविधं जानु ॥

*

प्रत्यङ्गमालिङ्गति यं सदैव साम्राज्यलक्ष्मीरनुमोदिकेव ।
तेनामुना राजवरेण राज्ञा प्रत्यङ्गसंघः सुधियाभ्यधायि ॥ ८९

इति श्रीराजाधिराजश्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते संगीतराजे षोडशसाहस्र्यां सङ्गीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे अङ्गोल्लासे प्रत्यङ्गपरीक्षणं द्वितीयं समाप्तम्[1] ।

प्रथमोल्लासे तृतीयं परीक्षणम्

उपाङ्गं(? ङ्गे)यस्य शोभेते[1] चन्द्रगङ्गे सदोज्ज्वले ।
सदोज्ज्वलेन महसा भ्राजमानं नुमः शिवम् ॥ १

*

[उपाङ्गानि ।]

दृष्ट(? ष्टि)पुटताराश्च कपोलौ नासिकानिलः ।
अधरो दशना जिह्वा चिबुकं वदनं तथा ॥ २
उपाङ्गानि द्वादशेति शिरस्यङ्गान्तरेषु च ।
पार्ष्णीगुल्फौ तथाङ्गुल्यः करयोः पादयोस्तले ॥ ३
मुखरागश्च करयोः प्रचाराः करणानि च ।
कर्माणि पाणिक्षेत्राणि तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ४

*

[अथ दृष्टिप्रकरणम् ।]

दृष्टयस्त्रिविधास्तत्र स्थायिजा रसजास्तथा ।
व्यभिचारिभवाश्चेति तासां लक्षणमुच्यते ॥ ५

---

1 BC drop समाप्तं । 2 ABC शोभाते ।

स्निग्धा हृष्टा तथा दीना क्रुद्धा दृप्ता भयान्विता ।
जुगुप्सिता विस्मितेति स्थायिजा अष्टदृष्टयः ॥ ६
कान्ता हास्या च करुणा रौद्री वीरा भयानि(? न)का ।
बीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टौ द्रष्टव्या रसदृष्टयः ॥ ७
शून्या च मलिना श्राता (?न्ता)लज्जिता शङ्किता तथा ।
मुकुला चार्धमुकुला ग्लाना जिह्मा च कुञ्चिता ॥
वितर्किताभितप्ता च विषण्णा ललिताभिधा ॥ ८
आकेकरा विशोका च विभ्रान्ता विप्लुता तथा ।
त्रस्ता च मदिरेत्येता विंशतिर्व्यभिचारिजाः ॥ ९
व्यभिचारिषु सर्वेषु यथासां विंशतेर्दृशाम् ।
विनियोगस्तथा सम्यग्वक्ष्यामः पूर्वशास्त्रतः ॥ १०
षट्त्रिंशन्मिलिताः सर्वा भवन्ति त्रिविधा [अपि]
रसभावजयोर्दृष्ट्योर्न विशेषोऽस्ति किं त्विह
भावजायामनुद्भूता भावा रत्यादयश्च ते ॥ ११

*

स्निग्धा विकाशिनी स्निग्धमधुरा चतुरे भ्रुवौ ।
बिभ्रती साभिलाषोद्यदेकभ्रूस्तु कटाक्षिणी ॥ १२

॥ इति स्निग्धा ॥ १ ॥

*

हृष्टा निमेषिणी किञ्चित्स्मिता कुञ्चितचञ्चला ।
अन्तर्विशत्तारका च फुल्लगल्ला स्मृता बुधैः ॥ १३

॥ इति हृष्टा ॥ २ ॥

*

दीनार्द्धपतितोर्ध्वस्थपुटेषद्रुद्धतारका ।
मन्दसञ्चारिणी बाष्पव्याकुला सद्भिरिष्यते ॥ १४

॥ इति दीना ॥ ३ ॥

*

क्रुद्धा स्थिरोद्वृत्तपुटा किञ्चित्तरलतारका ।
भ्रुकुटी कुटिला रूक्षा दृष्टिविद्भिरुदाहृता ॥ १५

॥ इति क्रुद्धा ॥ ४ ॥

*

दृप्ता विकसिता सत्त्वमुद्गिरन्तीव सुस्थिरा ॥ १६

॥ इति दृप्ता ॥ ५ ॥

निर्गच्छदिव यन्मध्यं त्रासविक्षिप्ततारका ।
विस्फारितोभयपुटा दृष्टिरुक्ता भयान्विता ॥ १७

॥ इति भयान्विता ॥ ६ ॥

*

जुगुप्सिताऽदृश्यदृष्टावुद्विग्ना संकुचत्पुटा ।
मीलत्कनीनिका स्पष्टालोकिनी परिकीर्तिता ॥ १८

॥ इति जुगुप्सिता ॥ ७ ॥

*

विस्मिता दूरविस्फारितारका च [1]विकाशिनी ।
निश्चलोद्वृत्ततारा च पुटद्वन्द्वा निमेषिणी ॥ १९

॥ इति विस्मिता ॥ ८ ॥

*

इत्यष्टौ दृष्टयः प्रोक्ताः क्रमाद्र[2]त्यादिभावजाः ।
रसदृष्टय एताः स्युर्भावैरत्युल्बणैः स्फुटाः ॥ २०
सभ्रूक्षेपकटाक्षा स्यात् सविकाशातिनिर्मला ।
आपिबन्तीव दृश्यं या कान्ता कामविवर्धनी ॥ २१
यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्तनम् ।
तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते[3] ॥ २२

॥ इति कान्ता ॥ १ ॥

*

आकुञ्चितपुटा मन्दमध्यतीव्रतया क्रमात् ।
मध्ये किञ्चित् समाविष्टविचित्रभ्रान्ततारका ।
त्रिविधप्रकृतेर्हास्या दृष्टिर्विस्मापने मता ॥ २३

॥ इति हास्या ॥ २ ॥

*

नासाग्रानुगता सास्रा[4] किञ्चिन्निश्चलतारका ।
पतितोर्ध्वपुटा शोकात् करुणा दृष्टिरिष्यते ॥ २४

॥ इति करुणा ॥ ३ ॥

*

रूक्षोग्रा भ्रुकुटी भीमा लोहिता स्तब्धतारका ।
चञ्चलद्विपुटी रौद्री दृष्टिर्दृष्टिविदोदिता ॥ २५

॥ इति रौद्री ॥ ४ ॥

*

---

1 BC विशाकिनी । 2 BC °इत्यादि । 3 ABC प्रचक्ष्यते । 4 ABC सास्रः ।

वीरा संकुचितापाङ्गा दीप्ता च समतारका ।
अचञ्चला[1] विकसिता गम्भीरा धीरसंमता ॥ २६
गाम्भीर्यमाधुर्यविलासशोभा-
[2]स्थैर्यौजऔदार्यमुखानशेषान् ।
विवृण्वती सत्त्वविशेषभेदान्
प्रसादलालित्यमुखैर्न मुख्यान् ॥ २७

॥ इति वीरा ॥ ५ ॥

*

अत्यन्तचञ्चलोद्वृत्ततारोद्वृत्तपुटा जडा ।
दृश्यमग्निमिवास्पृष्ट्वा याति भीत्या भयानका ॥ २८

॥ इति भयानका ॥ ६ ॥

*

मीलल्लोलचलत्पक्ष्मा चलत्तारा मिलत्पुटौ ।
अपाङ्गौ संसृता दृश्योद्वेगाद्वीभत्सिका स्मृता ॥ २९

॥ इति वीभत्सा ॥ ७ ॥

*

अन्तर्बहिर्गामिकनीनिकेषन्मिलत्पुटापाङ्गविकाशिनी च ।
प्रसन्नशुक्लांशविशुद्धधिष्णाद्भुता स्मृता दृष्टिरियं पुराणैः ॥ ३०

॥ इत्यद्भुता ॥ ८ ॥

*

शृङ्गारादिरसेष्विष्टा[3] दृष्टयोऽष्टौ क्रमादिमाः ॥ ३१

॥ इत्यष्टौ रसदृष्टयः ॥

*

अथ विंशतिरुच्यन्ते व्यभिचारिसमाश्रयाः ।
निष्कम्पा मलिनापाङ्गा धूसरा पुटतारयोः ।
शून्यप्रकाशिनी दृष्टिः शून्या शून्यविलोकिनी ॥ ३२

॥ इति शून्या ॥ १ ॥

*

मलिना किञ्चदाकुञ्चत्पुटा पक्ष्माग्रमन्थरा ।
व्यावृत्य तारकापाङ्गे दृश्याद्वैवर्ण्यशंसिनी ॥ ३३
दृष्टिः स्याद्विकृते स्त्रीणां दृष्टिविद्भिरुदाहृता ।
विकृतं तद्वरोरूणां प्रियेण समयेऽपि यत् ।
प्राप्तेऽसंलपनं माना[द्]रोषाद्वेति विनिश्चितम् ॥ ३४

॥ इति मलिना ॥ २ ॥

*

1 BC अचला । 2 ABC °थैर्यो° । 3 ABC °सेधिष्टा ।

अलसा निपतत्तारा स्रस्तापाङ्गा विलोकिनी ।
दूराद् ग्लानोभयपुटा दृष्टिः श्रान्ता श्रमार्तिषु ॥ ३५

॥ इति श्रान्ता ॥ ३ ॥

*

लज्जिताऽन्योऽन्यतः स्पृष्टपक्ष्माग्रा किञ्चिदग्रतः ।
मीलत्तारा विनम्रोर्द्ध्वपुटा सापत्रपाभरे ॥ ३६

॥ इति लज्जिता ॥ ४ ॥

*

व्यामूढे वाच्यता तिर्यग्मुहुश्चकिततारका ।
नातिस्थिरा निवृत्ता प्रागीक्षणाद्बहिरुन्मुखी ।
शङ्कायां शङ्किता दृष्टिर्नाव्यविद्भिरुदाहृता ॥ ३७

॥ इति शङ्किता ॥ ५ ॥

*

पतितोर्ध्वपुटा दृष्टिः किञ्चिन्मीलिततारका ।
[1]स्फुरदाश्लिष्टपक्ष्माग्राप्यधोनीतकनीनिका ॥ ३८
विनम्रोर्ध्वपुटा दृष्टिर्मुकुलेति प्रकीर्तिता ।
निद्रायामियमानन्दे हृद्ययोः स्पर्शगन्धयोः ॥ ३९

॥ इति मुकुला ॥ ६ ॥

*

मीलितार्धपुटा किञ्चिदस्फुटार्धकनीनिका ।
उक्तार्धमुकुला दृष्टिराह्लादे विनियुज्यते ॥ ४०

॥ इत्यर्धमुकुला ॥ ७ ॥

*

अन्तर्निविष्टतारा या मलिना मन्दचारिणी ।
विश्लथभ्रूपक्ष्मपुटा ग्लाना ग्लानौ नियोजिता ।
अपस्मारादिकेऽप्येषा संप्रोक्ता भरतादिभिः ॥ ४१

॥ इति ग्लाना ॥ ८ ॥

*

किञ्चित्कुञ्चत्पुटा तिर्यक् शनैर्गूढं विलोकिते ।
तिर्यक् पतिततारा या जिह्मापाङ्गपटत्पुटा ।
जडतायामसूयायामालस्ये च नियुज्यते ॥ ४२

॥ इति जिह्मा ॥ ९ ॥

*

1 ABC पुरदा ।

ईषत्कुञ्चितपक्ष्माग्रभ्रूपुटा वक्रतारका ।
तिर्यग् निविष्टा दृष्टिः स्यात् कुञ्चितासूयितेऽपि सा ।
अनिष्टेऽर्थे व्यथायां च दुरालोके महस्यपि ॥ ४३

॥ इति कुञ्चिता ॥ १० ॥

*

अधःसञ्चारिणी तारोत्फुल्लोद्भ्रान्तपुटापि च ।
वितर्किता वितर्के सा विनियुक्ता मनीषिभिः ॥ ४४

॥ इति वितर्किता ॥ ११ ॥

*

विलोकितेऽलसं भ्रान्ते संतप्ते इव तारके ।
व्यथाचलत्पुटोपेते यस्यां सोक्ताऽभितप्तिका ।
उपतापेऽभिघाते च निर्वेदेऽपि नियुज्यते ॥ ४५

॥ इत्यभितप्ता ॥ १२ ॥

*

स्तब्धतारानिमेषाद्या विस्तारितपुटद्वया ।
विषण्णा पतितापाङ्गा विषादे विनियुज्यते ॥ ४६

॥ इति विषण्णा ॥ १३ ॥

*

[1]सभ्रूक्षेपस्मितापाङ्गे कुञ्चिता मधुरोन्मुखी ।
ललिता ललिते प्रोक्ता दृष्टिर्मन्मथमन्थरा ॥ ४७

॥ इति ललिता ॥ १४ ॥

*

ईषद्वक्रपुटापाङ्गा तिर्यगर्धनिमेषिणी ।
नेत्रान्तरादन्यपथालोका व्यस्तविवर्तिनी ॥ ४८
दृष्टिराकेकरा दूरालोके विच्छेदकर्मणि ।
सापराधे प्रिये स्नेहविच्छेदेन यदीक्षणम् ।
तद्विच्छेदप्रेक्षितं स्याद् दूरालोकेऽपि सा स्मृता ॥ ४९

॥ इत्याकेकरा ॥ १५ ॥

*

विकाशिन्यनिमेषा च विकाशितपुटद्वया ।
इतस्ततो भ्रान्ततारा विशोका दृष्टिरिष्यते ।
ज्ञाने क्रोधे च विज्ञाने गर्व उग्रावलोकने ॥ ५०

॥ इति विशोका ॥ १६ ॥

*

---

1 ABC स्व° cf सभ्रूक्षेपस्मितान्विता सं. र. अ. ७ श्लो. ४१९ ।

विभ्रान्ता क्वचिदश्रान्तमविश्रब्धविलोकिनी ।
चञ्चलोत्फुल्लतारा च विस्तीर्णा दृष्टिरुच्यते ।
नियुक्ता विभ्रमे वेगे संभ्रमे च मनीषिभिः ॥ ५१

॥ इति विभ्रान्ता ॥ १७ ॥

*

पततः क्रमतो यस्याः स्तब्धविस्फुरितौ पुटौ ।
विप्लुता चापले दुःखे तून्मादादौ च कोविदैः ॥ ५२

॥ इति विप्लुता ॥ १८ ॥

*

त्रासोद्भ्रमत्पुटा त्रस्ता सोत्कम्पोत्फुल्लतारका ॥ ५३

॥ इति त्रस्ता ॥ १९ ॥

*

त्रिविधा मदिरा दृष्टिर्मद्य(? द)त्रैविध्यतः स्मृता ।
अधमे पुंसि संस्थस्तु मदस्तीव्रोऽधमो मतः ॥ ५४
अधः सञ्चारिणी तत्र किञ्चिदृष्टकनीनिका ।
यत्नेऽप्यसिध्यदुन्मेषान्निमेषाद् याधमे मदे ॥ ५५
मध्ये किञ्चिद्भ्रमत्तारा किञ्चित्कुञ्चत्पुटद्वये ।
अनवस्थितसञ्चारा मदिरा मध्यमे मदे ॥ ५६
तरुणे क्षामनयना तथापाङ्गविकाशिनी ।
आघूर्णमानतारा तु मदिरा दृष्टिरिष्यते ॥ ५७

॥ इति त्रिविधा मदिरा ॥ २० ॥

*

इत्युक्ता दृष्टयो लोकदृष्टिमार्गमुपाश्रिताः ।
षट्त्रिंशत् सन्त्यनन्तास्तास्ताराभ्रूपुटकर्मणाम् ॥ ५८
संदर्भाद् ब्रह्मणाप्येताः प्रत्येकं वक्तुमक्षमाः ।
तत्प्रयोगप्रपञ्चार्थं भ्र्वादिकानधुना ब्रुवे ॥ ५९

॥ इति दृष्टिप्रकरणम् ॥

*

[भ्रूः ।]

सहजा पतितोत्क्षिप्ता रेचिता कुञ्चिता तथा ।
भ्रुकुटी चतुरा चेति सप्तधा भ्रूः स्मृता बुधैः ।
स्वभावात् सहजा ज्ञेया भावेषु सरलेष्वसौ ॥ ६०

॥ इति सहजा ॥ १ ॥

*

अधोगता तु पतिता पर्यायेण सहैव वा ।
जुगुप्सासूययो रोषे हासे हर्षे च विस्मये ।
उत्क्षेपे च तथा घ्राणे पतेते त उभे भ्रुवौ ॥ ६१

॥ इति पतिता ॥ २ ॥

*

क्रमेण सह वोत्क्षेपादुत्क्षिप्ता[1] संमता[2] सताम्
स्त्रीभिर्हेलालीलयोर्भ्रूरेकोत्क्षेप्या द्वयं नृभिः ।
कोपे वितर्के श्रवणे दर्शने च निजे तथा ॥ ६२

॥ इत्युत्क्षिप्ता ॥ ३ ॥

*

एकैव चलितोत्क्षिप्ता रेचिता कीर्तिता बुधैः ॥ ६३

॥ इति रेचिता ॥ ४ ॥

*

सद्वितीयैकिका वापि मृदुभङ्गिमनोहरा ।
निकुञ्चिताख्या भ्रूर्ज्ञेया नियोगोऽस्याः प्रदर्श्यते ।
मोट्टायिते कुट्टमिते विलासे किलकिञ्चिते[3] ॥ ६४

॥ इति कुञ्चिता ॥ ५ ॥

*

सा द्वितीया यदा मूलादुत्क्षिप्ता भ्रुकुटी क्रुधि ॥ ६५

॥ इति भ्रुकुटी ॥ ६ ॥

*

अल्पस्पन्दा सद्वितीयायता मन्थरचारिणी ।
चतुरा ललिते स्पर्शे शृङ्गारे रुचिरेऽपि च ॥ ६६

॥ इति चतुरा ॥ ७ ॥

॥ इति सप्तधा भ्रूः ॥

*

[पुटौ ।]

समौ कुञ्चितौ प्रसृतौ स्फुरितौ च विवर्तितौ ।
निमेषितोन्मेषितौ च पिहितौ च विताडितौ ॥ ६७
इत्येवं नवधा प्रोक्तौ पुटौ तल्लक्ष्म कथ्यते ।
स्वाभाविकौ समौ प्रोक्तौ स्वभावाभिनये च तौ ॥ ६८

॥ इति समौ ॥ १ ॥

*

1 BC °दुपात्क्षि° । 2 BC समता । 3 ABC किलकुञ्चिते ।

आकुञ्चितावहृद्ये स्तो रूपादौ कुञ्चितौ पुटौ ॥ ६९

॥ इति कुञ्चितौ ॥ २ ॥

*

प्रसृतावायतौ प्रोक्तौ हर्षे वीरे च विस्मये ॥ ७०

॥ इति प्रसृतौ ॥ ३ ॥

*

स्फुरितौ स्पन्दितौ प्रोक्तावीर्षायां विनियोजितौ ॥ ७१

॥ इति स्फुरितौ ॥ ४ ॥

*

विवर्तितौ समुद्वृत्तौ क्रोधे योज्यौ विपश्चिता ॥ ७२

॥ इति विवर्तितौ ॥ ५ ॥

*

निमेषितौ तु पुटयोः संश्लेषात् क्रोधगोचरौ ॥ ७३

॥ इति निमेषितौ ॥ ६ ॥

*

उन्मेषितौ च विश्लेषान्नियोगं पूर्वमाश्रितौ ॥ ७४

॥ इत्युन्मेषितौ ॥ ७ ॥

*

पिहितावतिसंलग्न[1]पुटौ स्यातां दृशो[2]रुजे ।
सुप्तमूर्च्छितव[3]र्षोष्णधूमवाताञ्जनार्तिषु ॥ ७५

॥ इति पिहितौ ॥ ८ ॥

*

पुटौ[4] विताडितौ[5] ज्ञेयावुत्तरेणाधराहतेः ।
अतिविस्फारणात् स्यातामदृ[6]श्यौ वा विताडितौ[5] ॥ ७६

॥ इति विताडितौ[5] ॥ ९ ॥

॥ इति नवधा पुटौ ॥

*

[ताराकर्माणि ।]

तारकाणां विभेदा ये ते कर्मोपाधिका मताः ।
कर्माण्यपि द्विधा स्वस्य विषयस्याभिमुख्यतः ॥ ७७
नव तत्र स्वनिष्ठानि प्राकृतं च प्रवेशनम् ।
वलनं भ्रमणं पातश्चलनं च विवर्तनम् ॥ ७८

---

1 ABC °स्फुटौ । 2 ABC दृशौ । 3 °हर्षो° in भ. को. पृ. ३७० । 4 BC स्फुटौ । 5 ABC through out वितालितौ instead of विताडितौ । 6 ABC स्यातांमदृ° ।

समुद्वृत्तं च निष्क्रामस्तेषां लक्षणमुच्यते ।

*

स्वभावावस्थितौ ज्ञेयं भावेनावेशभागिनि[1] ॥ ७९

रसेऽद्भुते[2] प्राकृतं तु,

॥ इति प्राकृतम् ॥ १ ॥

*

प्रवेशनमथोच्यते ।

प्रवेशात् पुटयोरन्तर्बीभत्से च रसे स्मृतम् ॥ ८०

॥ इति प्रवेशनम् ॥ २ ॥

*

वलनं त्र्यस्रगमनं रसयोर्वीररौद्रयोः ।

॥ इति वलनम् ॥ ३ ॥

*

तारयोर्मण्डलभ्रान्तिः [3]पुटान्तर्भ्रमणं मतम् ॥ ८१

रसे वीरे च रौद्रे च,

॥ इति भ्रमणम् ॥ ४ ॥

*

पातस्तु स्यादधोगतिः ।

रसे च करुणे कार्यः,

॥ इति पातः ॥ ५ ॥

*

चलनं च प्रकम्पनं ॥ ८२

भयानके रसे प्रोक्तं,

॥ इति चलनम् ॥ ६ ॥

*

कटाक्षस्तु विवर्तने ।

शृङ्गारे च रसे हास्ये,

॥ इति विवर्तनम् ॥ ७ ॥

*

समुद्वृत्तमथोद्गतिः ॥ ८३

रसे वीरे च रौद्रे च,

॥ इति समुद्वृत्तम् ॥ ८ ॥

*

1 ABC °गिनी° । 2 ABC द्भुतं । 3 ABC °टान्तेर्भ्र° ।

निर्गमस्त्वन्तरा तु यः ।
स निष्कामस्तु वीरेऽप्यद्भुते रौद्रे भयानके ॥ ८४

॥ इति निष्कामः ॥ ९ ॥

॥ इति नव स्वनिष्ठानि ताराकर्माणि ॥

*

[दर्शनानि ।]

ताराकर्माष्टकमथो विषयाभिमुखं ब्रुवे ।
रसभावे तु तत् ख्यातं साधारणतया बुधैः ॥ ८५
समं साच्यनुवृत्तावलोकितानि विलोकितम् ।
उल्लोकितालोकिते च प्रविलोकितमित्यपि ॥ ८६
कर्माण्येतानि कथ्यन्ते दर्शनानि मनीषिभिः ।

*

दर्शनं सममत्रोक्तं सौम्यमध्यकनीनिकम् ॥ ८७

॥ इति समम् ॥ १ ॥

*

पक्ष्मान्तर्लीनतारं च साचि तिर्यग्विलोकितम् ॥ ८८

॥ इति साचि ॥ २ ॥

*

अनुवृत्तं दर्शनं स्याद्रूपनिर्वर्णनायुतम् ।
अन्तःस्थिरतरा कात्स्न्र्याद् दिदृक्षया[1] क्रिया तु या ॥ ८९
निर्वर्णना तु सा ज्ञेया,

॥ इत्यनुवृत्तम् ॥ ३ ॥

*

चावलोकितमुच्यते ।
अधस्स्थदर्शनं तत् स्यात्,

॥ इत्यवलोकितम् ॥ ४ ॥

*

विलोकितमितो मतम् ॥ ९०
पृष्ठतो दर्शनं यत्तत्,

॥ इति विलोकितम् ॥ ५ ॥

*

उल्लोकितमिहोदितम् ।
ऊर्ध्वस्थवस्तुनो यत् स्यादवेक्षणमथो पुनः ॥ ९१

॥ इत्युल्लोकितम् ॥ ६ ॥

*

---

1 ABC °क्षाद्व° ।

आलोकितं यत् सहसा दर्शनं तन्मतं मुनेः ।

॥ इत्यालोकितम् ॥ ७ ॥

*

प्रविलोकितमत्रोक्तं दर्शनं पार्श्वमस्य तु ॥ ९२

॥ इति प्रविलोकितम् ॥ ८ ॥

॥ इत्यष्टौ दर्शनानि ॥

*

[कपोलौ ।]

कपोलौ षड्विधौ प्रोक्तौ समौ फुल्लौ च कुञ्चितौ ।
पूर्णौ क्षामौ कम्पितौ च; समौ स्वाभाविकौ मतौ ॥ ९३
अनावेशेषु भावेषु,

॥ इति समौ ॥ १ ॥

*

गल्लौ फुल्लौ विकाशितौ ।
प्रहर्षे विनियोक्तव्यौ ॥

॥ इति फुल्लौ ॥ २ ॥

*

संकोचात् कुञ्चितौ मतौ ॥ ९४
रोमाञ्चिते भये शीते ज्वरे चैतौ प्रकीर्तितौ ।

॥ इति कुञ्चितौ ॥ ३ ॥

*

पूर्णौ गर्वोत्साहयोः स्तः कपोलावुन्नतौ च यौ ॥ ९५

॥ इति पूर्णौ ॥ ४ ॥

*

दुःखे क्षामाववनतौ,

॥ इति क्षामौ ॥ ५ ॥

*

स्फुरितौ कम्पितौ मतौ ।
रोमहर्षे स्मृतौ तौ तु कपोलाः षडिमे मताः ॥ ९६

॥ इति कम्पितौ ॥ ६ ॥

॥ इति षट् कपोललक्षणम् ॥

*

[नासा ।]

नासापि षड्विधा स्वाभाविकी मन्दा विकूणिता ।

नता विकृष्टा सोच्छ्वासा स्वभावावस्थिता तु या ।
आवेशवर्जिते भावे नासा स्वाभाविकी मता ॥ ९७

॥ इति स्वाभाविकी ॥ १ ॥

*

निःश्वासोच्छ्वासमन्दत्वे मन्दा नासा शुचिः स्मृता ।
निर्वेदौत्सुक्यचिन्तासु नासा चैव विकूणिता[1] ॥ ९८

॥ इति मन्दा ॥ २ ॥

*

अतिसंकुचिता हास्ये जुगुप्सासूययोः पुनः ।

॥ इति विकूणिता ॥ ३ ॥

*

नता नासा मुहुः श्लेषविश्लेषितपुटा मता ।
मन्दविच्छन्नरुचिरे सोच्छ्वसाभिनये च सा ॥ ९९

॥ इति नता ॥ ४ ॥

*

अतीवोत्फुल्लपुटका विकृष्टार्तिभयादिषु ।
रोषोर्ध्वश्वासविषया भूरिसौरभलिप्सया ॥ १००

॥ इति विकृष्टा ॥ ५ ॥

*

सोच्छ्वासाकृष्टपवना निर्वेदादिषु सा स्मृता ।
दीर्घोच्छ्वासकरेऽर्थे च सौरभे विनियुज्यते ॥ १०१

॥ इति सोच्छ्वासा ॥ ६ ॥

॥ इति षोढा नासा ॥

*

[अनिलः ।]

प्रबद्धः स्खलितश्चैव निरस्तो विस्मितस्तथा ।
उल्लासितो विमुक्तश्च प्रसृताख्यश्चलौ परौ ॥ १०२
स्वस्थाविति नवोच्छ्वासनिःश्वासौ कोहलोदितौ ।
समो भ्रान्तो विलीनश्चान्दोलितः कम्पितः परः ॥ १०३
स्तम्भितोच्छ्वासनिःश्वाससूत्कृतानि च सीत्कृतम् ।
एवं दशविधः प्रोक्तो मारुतः कैश्चिदाहृतैः ॥ १०४

*

सशब्दं वदनाद्यस्तु प्रबद्धः सन् विनिर्गतः ।
स प्रबद्धस्तु निःश्वासः क्षयादिषु नियुज्यते ॥ १०५

॥ इति प्रबद्धः ॥ १ ॥

*

---

1 BC विकूणिका ।

यो निर्गच्छति दुःखेन स्खलितः सोऽभिधीयते ।
अन्त्यावस्थासु सव्याधौ प्रसूतिसमयेऽपि च ॥ १०६

॥ इति स्खलितः ॥ २ ॥

*

निर्गच्छति मुहुर्वक्रान्निरस्तः शब्दवान् मुहुः ।
श्रान्ते रोगे च दुःखार्ते विनियुक्तो बुधैरयम् ॥ १०७

॥ इति निरस्तः ॥ ३ ॥

*

मनस्यन्यपरेऽकस्माद्वर्तमानस्तु विस्मितः ।
चिन्तायामद्भुते चार्थे विस्मये च प्रवर्तते ॥ १०८

॥ इति विस्मितः ॥ ४ ॥

*

घ्राणेन मन्दमापीतो मरुदुल्लासितो मतः ।
हृद्यगन्धे च संदिग्धेष्वर्थेषूक्तो विचक्षणैः ॥ १०९

॥ इति उल्लासितः ॥ ५ ॥

*

निरुद्धश्चिरमामुक्तो विमुक्तः कथ्यते मरुत् ।
प्राणायामे तथा ध्याने योगे चैष नियुज्यते ॥ ११०

॥ इति विमुक्तः ॥ ६ ॥

*

दीर्घः सशब्दनिष्क्रान्तो घ्राणतः प्रसृतो मरुत् ।

॥ इति प्रसृतः ॥ ७ ॥

*

उष्णावुच्छ्वासनिःश्वासौ सशब्दौ वक्त्रनिर्गतौ ॥ १११
चलावुक्तौ तु तौ चिन्तौत्सुक्यशोकेषु कीर्तितौ ।

॥ इति चलौ ॥ ८ ॥

*

स्वस्थौ स्वभावजौ प्रोक्तौ वायू स्वस्थक्रियासु तौ ॥ ११२

॥ इति स्वस्थौ ॥ ९ ॥

॥ इति नवधानिलः ॥

*

समाख्या वायवोऽन्वर्थ[1] नामानः किन्तु कथ्यते ।
विनियोगः समो ज्ञेयः सहजे कर्मणि स्थितः ॥ ११३

॥ इति समः ॥ १ ॥

*

1 A वायवोस्त्वर्थ; BC वायवोस्त्वर्थनमोनः ।

भ्रान्तः स चान्तभ्र(? न्तर्भ्र)मणात् प्रथमे प्रियसंगमे ।

॥ इति भ्रान्तः ॥ २ ॥

*

लीनः स्यान्मूर्छिते वायुः,

॥ इति लीनः ॥ ३ ॥

*

पर्वतारोहणे पुनः ॥ ११४

आन्दोलितः,

॥ इति आन्दोलितः ॥ ४ ॥

*

कम्पितस्तु सुरते,

॥ इति कम्पितः ॥ ५ ॥

*

स्तम्भितः पुनः ।

शस्त्रमोक्षे,

॥ इति स्तम्भितः ॥ ६ ॥

*

तथोच्छ्वास आघ्राणे कुसुमादिनः ॥ ११५

॥ इति उच्छ्वासः ॥ ७ ॥

*

निःश्वासो[1]ऽनुशयादौ स्यात्,

॥ इति निःश्वासः ॥ ८ ॥

*

सूत्कृतं वेदनादिषु ।

शब्दानुक[2]रणे वक्रात् त्याज्ये वायौ च,

॥ इति सूत्कृतम् ॥ ९ ॥

*

सीत्कृतम् ॥ ११६

शीतक्लेशे ग्रा[3]ह्यवायौ शब्दानुकरणेऽपि च ।

नखक्षते मृगाक्षीणां निर्दयाधरखण्डने ॥ ११७

॥ इति सीत्कृतम् ॥ १० ॥

*

नासानिलेन व्याख्यातो मारुतो वे (? व)दनोद्भवः ।

विनियोगान्तराण्यत्र सुविज्ञेयानि लोकतः ॥ ११८

॥ इति अष्टात्रिंशद्विधो वायुः ॥

*

---

1 ABC °श्वासानु° । 2 Kumbha in भ. को. °नुहरणे (पृ. ७३७) । 3 Kumbha in भ. को. गुह्यवायौ (पृ. ७२९), but on p. 956 ग्राह्य ।

[अधरः ।]

विवर्तितः कम्पितश्च विसृष्टो विनिगूहितः ।
संदष्टकः समुद्गश्चे (? श्चो) द्वृत्तायतविकाशिताः ॥ ११९
रेचितश्चेति दशधा बुधैरोध (? ष्ठ) उदीरितः ।

*

तिर्यक् संकुचितश्चोष्ठपुटः प्रोक्तो विवर्तितः ॥ १२०
नियुक्तो वेदनासूयावज्ञाहास्यादिषु स्फुटम् ।
॥ इति विवर्तितः ॥ १ ॥

*

कम्पितः कम्पनाद्भीरुड्व्यथाशीतजपादिषु ॥ १२१
॥ इति कम्पितः ॥ २ ॥

*

विनिष्क्रान्तो विसृष्टः स्यादलक्ताद्येन रञ्जने ।
विलासे चैव बिब्बोके स्त्रीणां नृणां च हेलने ॥ १२२
॥ इति विसृष्टः ॥ ३ ॥

*

प्राणो मुखान्तर्निहितः साध्येषु विनिगूहितः ।
रोषेर्ष्ययोर्वरोरूणां बलाचुम्बति वल्लभे ॥ १२३
॥ इति विनिगूहितः ॥ ४ ॥

*

दन्तैर्दष्टोऽधरः क्रोधे संदष्टो विनियुज्यते ॥ १२४
॥ इति संदष्टः ॥ ५ ॥

*

समुद्गः कथ्यते चोष्ठसंपुटो दधदुन्नतिम् ।
फूत्कारे चानुकम्पायां चुम्बने चाभिनन्दने ॥ १२५
॥ इति समुद्गः ॥ ६ ॥

*

मुखोत्क्षिप्ततयोद्वृत्तः सोऽवज्ञापरिहासयोः ।
॥ इत्युद्वृत्तः ॥ ७ ॥

*

उत्तरोष्ठेन साकं स ततः [1]स्यादायतः स्मिते ॥ १२६
॥ इत्यायतः ॥ ८ ॥

*

किञ्चिद्वृत्तो(? दृष्टो)र्ध्वरदनो विकाशी कथ्यते स्मिते ।
॥ इति विकाशी ॥ ९ ॥

*

1 ABC °स्याद्यतः ।

रेचितस्तु विकारोऽपि(?रेऽपि) पर्यन्तवलनाद्भवेत् ॥ १२७

॥ इति रेचितः ॥ १० ॥

॥ इति दशाधरः ॥

*

[दन्तकर्माणि ।]

दन्तलक्षणसिद्ध्यर्थं दन्तकर्माण्यथो ब्रुवे ।
कुट्टनं खण्डनं छिन्नं चुक्कितं ग्रहणं समम् ॥ १२८
दष्टं निकर्षणं चेति दन्तकर्माष्टधा स्मृतम् ।

*

कुट्टनं घर्षणं प्रोक्तं शीतरुग्भी जरासु तत् ॥ १२९

॥ इति कुट्टनम् ॥ १ ॥

*

दन्तानां श्लेषविश्लेषौ मुहुः खण्डनमीरितम् ।
जपलक्षणसंलापाध्ययनेषु प्रकीर्तितम् ॥ १३०

॥ इति खण्डनम् ॥ २ ॥

*

संश्लेषः स्याद् दृढश्छिन्नं शीतभीरोदना[1]दिषु ।
व्याधौ च वीटिकाच्छेदे व्यायामादिषु चेप्सितम् ॥ १३१

॥ इति छिन्नम् ॥ ३ ॥

*

चुक्कितं[2] जृम्भणे दन्तपङ्क्त्यो[3]र्दूरस्थितेर्भवेत् ।

॥ इति चुक्कितम्[4] ॥ ४ ॥

*

ग्रहणं धारणं दन्तैरङ्गुल्यादेः प्रकीर्तितम् ॥ १३२

॥ इति ग्रहणम् ॥ ५ ॥

*

दन्तानां किंचिदाश्लेषः स्वभावाभिनये समम् ।

॥ इति समम् ॥ ६ ॥

*

दन्तैर्दष्टं भवेत् क्रोधे त्व[5]धरे दशनं तु यत् ॥ १३३

॥ इति दष्टम् ॥ ७ ॥

*

---

1 ABC रोदरा° । cf रोदने भीतिशीतयोः सं. र. अ. ७ श्लो. ४९९ । 2 and 4 ABC चुम्बितं । cf verse 136. 3 ABC पङ्क्तेर्दू°. cf दन्तपङ्क्त्योः स्थितिर्दूरे चुक्कितं जृम्भणादिषु । सं. र. अ. ७ श्लो. ५०० । 5 ABC त्वदधरे ।

निष्काशो निष्कर्षणं स्याद् मर्कटादिकरोदने ॥ १३४

॥ इति निष्कर्षणम् ॥ ८ ॥

॥ इत्यष्टौ दन्तकर्माणि ॥

*

[जिह्वा ।]

जिह्वाथ षड्विधा ऋज्व्यु[1]न्नता लोला च लेहिनी ।
वक्रा सृक्कानुगा चेति प्रसृतास्ये प्रसारिता ।
ऋज्वी श्रमे पिपासायां श्वापदानां प्रकीर्तिता ॥ १३५

॥ इति ऋज्वी ॥ १ ॥

*

व्यात्तास्यस्थोन्नता जिह्वा जृम्भास्यान्तस्थवीक्षयोः ।

॥ इति उन्नता ॥ २ ॥

*

प्रसृतास्ये चला लोला वेतालादौ प्रयुज्यते ॥ १३६

॥ इति लोला ॥ ३ ॥

*

जिह्वावलेहिनी ज्ञेया दन्तोष्ठे लेहिनी सती ॥ १३७

॥ इत्यवलेहिनी ॥ ४ ॥

*

नृसिंहाभिनये वक्रा व्यात्तास्यस्थोन्नताग्रिका ।

॥ इति वक्रा ॥ ५ ॥

*

लीढसृक्का स्मृता सृक्कानुगा कोपेष्टभक्षयोः ॥ १३८

॥ इति सृक्कानुगा ॥ ६ ॥

इति षोढा जिह्वा ॥

*

[चिबुकम्]

अङ्गुष्ठा[2] (?जिह्वौष्ठा) नुगतं तेषां क्रियया लक्षितं स्फुटम् ।
तथापि लक्ष्यते किञ्चिच्चिबुकं सुखबुद्धये ॥ १३९
व्यादीर्णं श्वसितं वक्रं संहतं चलसंहतम् ।
स्फुरितं चलितं लोलमेवं चिबुकमष्टधा ।

*

जृम्भाहास्यादिषु प्रोक्तं व्यादीर्णं दूरनिर्गतम् ॥ १४०

॥ इति व्यादीर्णम् ॥ १ ॥

*

---

1 ABC ऋज्वान्नताः । 2 cf जिह्वौष्ठदन्तक्रियया चिबुकं लक्ष्यते ततः । सं. र. अ. ७ श्लो. ५०७ ।

अधस्तादङ्गुलं स्रस्तं श्वसितं वीक्षितेऽद्भुते ।

॥ इति श्वसितम् ॥ २ ॥

*

तिर्यग्गतं तु वक्रं स्याद्ग्रहावेशे नियुज्यते ॥ १४१

॥ इति वक्रम् ॥ ३ ॥

*

संहतं मीलितमुखं निश्चलं मौनकर्मणि ॥ ४ ॥ १४२

॥ इति संहतम् ॥ ४ ॥

*

लग्नौष्ठं चञ्चलं नारीवल्गने चलसंहतम् ॥ ५ ॥ १४३

॥ इति चलसंहतम् ॥ ५ ॥

*

स्फुरितं कम्पितं प्रोक्तं शीते[1] (?भीते) शीतज्वरे बुधैः ।

॥ इति स्फुरितम् ॥ ६ ॥

*

चलितं श्लेषविश्लेषि क्षोभे वाक्स्तम्भकोपयोः ।

॥ इति चलितम् ॥ ७ ॥

*

तिर्यग्गतागतं लोलं रोमन्थावर्तनादिषु ॥ १४४

॥ इति लोलम् ॥ ८ ॥

॥ इत्यष्टधा चिबुकम् ॥

*

[वदनम् ।]

व्याभुग्नं भुग्नमुद्वाहि विधूतं विकृतं तथा ।
विनिवृत्तमिति प्राहुर्वदनं षड्विधं बुधाः ॥ १४५

*

व्याभुग्नं किञ्चिदायामि मुखं चिन्तादिके स्मृतम् ।
निर्वेदौत्सुक्ययोश्चापि,

॥ इति व्याभुग्नम् ॥ १ ॥

*

भुग्नं वक्त्रमधोमुखम् ।
यतेः स्वभावाल्लज्जायाम्, १४६

॥ इति भुग्नम् ॥ २ ॥

*

---

1 सं. र. अ. ७ श्लो. ५११. has भीते शीतज्वरे तथा ।

गर्वानादरतो म(?ग)तौ ॥
लीलासूत्क्षिप्तमुद्वाहि, १४७

॥ इत्युद्वाहि ॥ ३ ॥

*

विधुतं तिर्यगायतम् ।
निषेधे नैवमित्युक्तौ, १४८

॥ इति विधुतम् ॥ ४ ॥

*

विवृतं तु प्रकीर्तितम् ।
विश्लिष्टौष्ठं हास्यशोकभयादिषु विचक्षणैः ॥ १४९

॥ इति विवृतम् ॥ ५ ॥

*

विनिवृत्तं तु तत् प्रोक्तं यत्परावृत्तमाननम् ।
रोषेर्ष्यासूयितेष्वर्थष्वेतन्नृत्तविदो विदुः ॥ १५०

॥ इति विनिवृत्तम् ॥ ६ ॥

इति षोढा वदनानि ॥

॥ इति द्वादश शिरस उपाङ्गानि ॥

*

[पार्ष्णिगुल्फकराङ्गुलिभेदाः ।]

उत्क्षिप्तापतितोत्क्षिप्तपतितान्तर्गता तथा ।
बहिर्गता मिथोयुक्ता वियुक्ताङ्गुलिसंयुता ॥ १५१
अध्यष्ट(?अष्टधा)पार्ष्णिरित्युक्ता पादचारपदेष्वियम् ।
गुल्फावङ्गुष्ठसंश्लिष्टावन्तर्यातौ बहिर्गतौ ॥ १५२
मिथोयुक्तौ वियुक्तौ च पञ्चधा मुनिनोदितौ ।
एतेषां विनियोगस्तु स्थानकादिषु दृश्यते ॥ १५३
संयुता वियुता वक्राः प्रसृताः पतितास्तथा ।
कुञ्चन्मूलाश्च वलिताः कराङ्गुल्यस्तु सप्तधा ॥ १५४
नाम्नैव कृतलक्ष्माणो भेदाः पार्ष्ण्योदिता इमे ।

*

[चरणाङ्गुलिभेदाः ।]

अधःक्षिप्तास्तथोत्क्षिप्ता कुञ्चिताश्च प्रसारिताः ॥ १५५
संलग्नाः पञ्चधा ज्ञेयाश्चरणेऽङ्गुलयो बुधैः ।
अधःक्षिप्ता मुहुः पातात् बिब्बोके किलकिञ्चिते ॥ १५६

॥ इति अधःक्षिप्ता ॥ १ ॥

*

नवोढा लज्जिते तूर्ध्वक्षेपादुत्क्षिप्तिका मुहुः ।
॥ इत्युत्क्षिप्ता ॥ २ ॥

*

शीतमूर्छाग्रहत्रासैः कुञ्चिता कुञ्चनात् स्मृता ॥ १५७
॥ इति कुञ्चिता ॥ ३ ॥

*

ऋजुः प्रसारिताः स्तब्धाः स्वापे स्तम्भेऽङ्गमोट्टने ।
॥ इति प्रसारिता ॥ ४ ॥

*

अङ्गुष्ठस्याप्यमी भेदाश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।
मिथोलग्नाश्च संलग्ना साङ्गुष्ठाः कर्षणे स्मृताः ॥ १५८
॥ इति संलग्नाः ॥ ५ ॥

*

उद्धृतं पतिताग्रं चोद्धृताग्रं भूमिलग्नकम् ।
कुञ्चन्मध्यं तिरश्चीनं षोढा पादतलं स्मृतम् ॥ १५९
॥ इति पार्ष्णिगुल्फाङ्गुलितलानि करचरणोपाङ्गानि ॥

*

उपाङ्गसेवकाः सिंहासनसच्छत्रचामरैः ।
भिद्यन्ते यस्य तेनात्रोपाङ्गसंघः प्रदर्शितः ॥ १ ॥

इति श्रीराजाधिराजश्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते सङ्गीतराजे षोडशसाहस्र्यां सङ्गीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे अङ्गोल्लासे उपाङ्गपरीक्षणं तृतीयं समाप्तम् ॥ ३ ॥

प्रथमोल्लासे चतुर्थं परीक्षणम्

यस्मिन्नविद्ययाहार्यं विश्वं भाति सनातने ।
तमनाहार्यकार्येशमार्येशं शङ्करं नुमः ॥ १

*

[आहार्याभिनयः ।]

अथ निर्धार्यते सम्यगाहार्याभिनयो मया ।
यतः प्रयोगः सर्वोऽयमाहार्याभिनये स्थितः ॥ २
यतः प्रकृतयः पूर्वं नानानेपथ्यसाधिताः ।
अन्ते (? अतो) ऽङ्गाद्यैरभिव्यक्तिमभिगच्छन्त्ययत्नतः ॥ ३
नेपथ्यजो विधिः सर्व आहार्याभिनयाभिधः ।
कार्यः प्रयत्नस्तत्रैव प्रयोगे शुभमिच्छता ॥ ४
नेपथ्यशब्दवाच्यस्तु नाट्यालङ्कार इष्यते ।
स एवाहार्यशब्देन नाटके व्यपदिश्यते ॥ ५

[नेपथ्यम् ।]

चतुर्विधं तु नेपथ्यं पुस्तोऽलङ्कार एव च ।
तथाङ्गरचना चैव ज्ञेयः सजीवमेव च ॥ ६
पुस्तस्तु त्रिविधो ज्ञेयो नानारूपप्रमाणतः ।
सन्धिमो व्याजिमश्चैव चेष्टितश्च प्रकीर्तितः ॥ ७

*

[अलङ्कारः ।]

कायस्यालङ्कृतिर्येन सोऽलङ्कारः स च द्विधा ।
माल्यमाभरणं चेति तत्र माल्यमनावृतम् ॥ ८
चतुर्विधं तु विज्ञेयं देहस्याभरणं बुधैः ।
आवेध्यं बन्धनीयं च क्षिप्यमारोप्यकं तथा ॥ ९
आवेध्यं कुण्डलादीह यत् स्यात् श्रवणभूषणम् ।
श्रोणिसूत्राङ्ग[1]दैर्मुक्ताबन्धनीयानि निर्दिशेत् ॥ १०
प्रक्षेप्यं नूपुरं विद्याद्वस्त्राभरणमेव च ।
आरोप्यं हेमसूत्रादि हाराश्च विविधाश्रयाः ॥ ११

*

[अङ्गरचना ।]

सितरक्तश्यामपीता वर्णास्तैरङ्गसंस्कृतिः ।
वर्णानां संकरोद्भूता शस्ताङ्गरचना मता ।
बहुभिर्वर्णिता वर्णैः स्यादङ्गरचना नवा ॥ १२

*

[पुस्तः ।]

पुस्तः स उच्यते नाट्ये यद्विमानादि दृश्यते ।

॥ वस्त्रकर्म ॥

केलिजै (? किलिञ्जै) श्चर्मवस्त्राद्यैः संधानात् संधिमो मतः ॥ १३
व्याजैः सूत्राकर्षणाद्यै रचितो व्याजिमो मतः ।
मधूच्छिष्टान्नजत्वादियोगैर्यश्चेष्ट्यते नटैः ॥ १४

*

---

1 ABC °देमुक्ता of श्रोणिसूत्राङ्गदैर्मुक्ता । ना. शा. अ. २३, श्लो. १३ (C. S. S.)

[सजीवम् ।]

स चेष्टितः[1] स्यात् सजीवो रङ्गे प्राणिप्रवेशनम् ।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १५
प्राणिसंज्ञाः कृता ह्येते जीवबन्धास्तथापरे ।
शैलप्रासादयन्त्राणि चर्मवर्मध्वजास्तथा ॥ १६
नानाप्रहरणाद्याश्च ते प्राणिन इति स्मृताः ।
अथवा कारणोपेता भवन्त्येते शरीरिणः ॥ १७
वेषभावाश्रयोपेता नाट्यधर्मीमुपाश्रिताः ।
वर्णानां तु विधिं ज्ञात्वा वयःप्रकृतिमेव च ॥ १८
कुर्यादङ्गस्य रचनां देशजातिवयःश्रिताम् ।
द्विपादः [2]पादरहिताः चतुष्पाद इति त्रिधा ॥ १९
प्राणिनः प्रथमे तत्र देवमानुषपक्षिणः ।
पादहीनास्तु भुजगाश्चतुष्पादा[3] गवादयः ॥ २०
एवमाहार्यविधयो गवेष्या भरतादिह ।
अप्रस्तुतत्वात्ते नेह विस्तरेण प्रपञ्चिताः ॥ २१
भूषाप्रसङ्गतः किञ्चिन्नेपथ्यमिह दर्शितम् ।

*

[मुखरागः ।]

अभिनेयार्थसंपत्तिः करणैरवधार्यते ॥ २२
साधीना मुखरागस्य तत् स आदौ निरूप्यते ।
यतो वदनरागोऽयं चित्तवृत्तिं रसात्मिकाम् ॥ २३
प्रकटीकुरुते तस्मादर्थसिद्धिस्तदाश्रिता ।
मुखरागमृतेऽङ्गानि नालमर्थप्रकाशने ॥ २४
अतस्तेनैव शोभन्ते तानि खं शशिना यथा ।
रसानुशायिनी संपत् पदार्थानां प्रकाशते ॥ २५
तामात्मस्थां व्यनक्त्यत्र मुखरागो रसे रसे ।
स चतुर्धा स्मृतो राज्ञा पूर्वः[4] स्वाभाविकस्तथा ॥ २६

---

1 Chaukhamba and Nirnaya Sagar editions of N. S. have the reading चेष्टिमः as above (A. 23.) V. 8. (C. S. S.) A. 21. V. 8 (N. S.). but the G. O. S. has the reading वेष्टिमः-(P. 110). This is a more intelligible reading. Abhinavagupta explains it as जतुसिक्थादिना वेष्टस्तेन निर्वृत्तो वेष्टिमः । P.110. 2 BC drop पादरहिता चतुः । 3 ABC पादौ । 4 ABC पूर्वस्वा° ।

प्रसन्नश्च तथा रक्तः श्यामश्चैव चतुर्थकः ।
स्वाभाविको यथार्थस्तु भावेनाविष्ट इष्यते ॥ २७

॥ इति स्वाभाविकः ॥ १ ॥

*

शृङ्गाराद्भुतहास्येषु प्रसन्नो निर्मलो मतः ।

॥ इति प्रसन्नः ॥ २ ॥

*

रक्तं स्यादरुणो रौद्रे करुणेऽद्भुतवीर्ययोः ।

॥ इति रक्तः ॥ ३ ॥

*

श्यामो यथार्थो विज्ञेयो बीभत्से च भयानके ॥ २८

॥ इति श्यामः ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्धातु (? मुख) रागः ॥

*

[हस्तप्रचाराः ।]

हस्तप्रचरणाधीनं सर्वं नृत्यं यतस्ततः ।
अतो नानामतैक्येन तानहं वच्मि तत्त्वतः ॥ २९
उत्तानश्च ततः पार्श्वगोऽग्रगोऽधस्तलस्तथा ।
स्वसंमुखतलश्चोर्ध्वमुखोऽधोवदनस्तथा ॥ ३०
पराङ्मुखः पार्श्वतलः संमुखश्चाग्रतस्तलः ।
ऊर्ध्वगोऽधोगतः पार्श्वगतोऽन्यः पार्श्वतो मुखः ॥ ३१
एते पञ्चदशैवात्र प्रचाराः करसंश्रयाः ।
नाम्नैव व्यक्तलक्ष्माणो न ततो लक्षिताः पृथक् ॥ ३२

॥ इति पञ्चदश हस्तप्रचाराः ॥

*

[करणानि ।]

निरपेक्षो यथा सर्वोऽभिनयः सर्वमृच्छति ।
क्रियाविशेषो हस्तस्य सर्वसाधारणस्तथा ॥ ३३
क्रियते नृत्यविद्भिर्यस्तद्धस्तकरणं मतम् ।
आवेष्टितोद्वेष्टिते च व्यावर्तितमतः परम् ॥ ३४
परिवर्तितमित्येतच्चतुर्धा परिकीर्तितम् ।

*

तर्जन्याद्यङ्गुलीनां यत्तलसंमुखतः क्रमात् ॥ ३५
आवेष्टितं स्यादागच्छेदावक्षः पार्श्वतः करः ।

करस्य करणं नाम तदावेष्टितमीरितम् ॥ ३६

॥ इति आवेष्टितम् ॥ १ ॥

*

अङ्गुल्योऽनुक्रमेणैव निर्गच्छन्ति तलाद्बहिः ।
वक्षस्तोऽपि करस्तद्वत् तदुद्वेष्टितमीरितम् ॥ ३७

॥ इति उद्वेष्टितम् ॥ २ ॥

*

आवर्तितकनिष्ठाद्यमेवमेव प्रकीर्तितम् ॥ ३८

॥ इत्यावर्तितम् ॥ ३ ॥

*

तथैव कनिष्ठा(?ष्ठि)[का]द्यमुद्वेष्टित[1]वदीरितम्[2] ।
परिवर्तितनामैतत् करणं करसंश्रितम् ॥ ३९

॥ इति परिवर्तितम् ॥ ४ ॥

॥ इति चत्वारि करणानि ॥

*

[करकर्माणि ।]

विंशतिः करकर्माणि नामलक्ष्माणि वस्यतः(?) ।
धूननं श्लेषविश्लेषौ क्षेपो रक्षणमोक्षणे ।
परिग्रहो निग्रहो ह्युत्कृष्ट्या[3]कृष्टिविकृष्टयः ॥ ४०
ताडनं तोलनं छेदभेदौ स्फोटनमोटने ।
विसर्जनमथाह्वानं तर्जनं चेति विंशतिः ॥ ४१

॥ इति विंशतिः करकर्माणि ॥

*

[हस्तक्षेत्राणि ।]

पार्श्वद्वयं पुरस्ताच्च पश्चादूर्ध्वमधः शिरः ।
ललाटकर्णस्कन्धोरोनाभयः कटिशीर्षके ।
ऊरुद्वयं च हस्तानां क्षेत्राणीति त्रयोदश ॥ ४२

॥ इति त्रयोदश हस्तक्षेत्राणि ॥

*

येनाहार्यं जगति जगतीनाथसर्वस्वमुर्वी
धार्या पार्या[4] समग्रा वितरणसरणिः कार्यमार्यानुरूपम् ।
स्मार्यं रामानुचरितमनिशं दार्यमारं[5] समग्रं
तेनाहार्या[6]भिनयनिगमो[7]ऽकार्यशेषः क्षितीशः[8] ॥ ४३

1 ABC उद्वेष्टितम् । 2 ABC यदिव° । 3 ABC ग्रह्योत्कृ° । 4 BC पर्या । 5 BC °मारस° । 6 BC °हाया । 7 BC निगमौ । 8 ABC क्षितीशा ।

इति सरस्वतीरससमुद्भूतकैरवोद्याननायकेन अभिनवभरताचार्येण मालवाम्भोधिमाथमन्थमहीधरेण योगिनीप्रसादासादितयोगिनीपुरेण मण्डलदुर्गोद्धरणोद्धृतसकलमण्डलाधीश्वरेण अजयमेरुजयाजयविभवेन यवनकुलाकालकालरात्रिरूपेण शाकम्भरीरमणपरिशीलनपरिप्राप्तशाकम्भरीतोषितशाकम्भरीप्रमुखशक्तित्रयेण नागपुरोद्धूलनधर्षितनागपुरेण अर्बुदाचलग्रहणसंदर्शिताचलाद्भुतप्रतापेण गूर्जराधीशधीरत्वोन्मूलनप्रचण्डपवनेन श्रीमत्कुम्भलमेरुनवीननिर्मितपराजितसुमेरुणा श्रीचित्रकूटभौमस्वर्गतयथार्थीकरणचारुतरपथेन मेदपाटसमुद्रसंभवरोहिणीरमणेन अरिराजमत्तमातङ्गपञ्चाननेन प्ररूढपत्रयवनदवदहनदवानलेन प्रत्यर्थिपृथिवीपतितिमिरततिनिराकरणप्रौढप्रतापमार्तण्डेन वैरिवनितावैधव्यदीक्षादानदक्षोद्दण्डकोदण्डदण्डमण्डिताखण्डभुजादण्डेन भूमण्डलाखण्डलेन श्रीचित्रकूटविभुना अध्युष्टतमनरेश्वरेण गजनरतुरगाधीशराजत्रितयतोडरमल्लेन वेदमार्गस्थापनचतुराननेन याचककल्पनाकल्पद्रुमेण वसुन्धरोद्धरणादिवराहेण परमभागवतेन जगदीश्वरीचरणकिङ्करेण भवानीपतिप्रसादाप्तापसादवरप्रसादेन राजगुर्वादिबिरुदावलीविराजमानेन राजाधिराजमहाराणा-श्रीमोकलेन्द्रनन्दनेन राजाधिराज-श्रीकुम्भकर्णेन विरचिते संगीतराजे षोडशसाहस्र्यां संगीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे अङ्गोल्लासे आहार्याभिनयपरीक्षणं चतुर्थं समाप्तम्।[1]

---

1 c. इति सरस्वतीरससमुद्भूतकैरवोद्याननायकेन अभिनवभरताचार्येण मालवांभोधिमाथमंथमहीधरेण योगिनीप्रसादासादितयोगिनीपुरेण मण्डलदुर्गोद्धरणोद्धृतसकलमण्डलाधीश्वरेण अजयमेरुजयाजयविभवेन यवनकुलाकालकालरात्रिरूपेण शाकंभरीरमणपरिशीलनपरिप्राप्तशाकंभरीतोषितशाकंभरीप्रमुखशक्तित्रयेण नागपुरोद्धूलनधर्षितनागपुरेण अर्बुदाचलग्रहणसंदर्शिताचलाद्भुतप्रतापेण गूर्जराधीशधीरत्वोन्मूलनप्रचण्डपवनेन श्रीमत्कुंभलमेरुनवीननिर्मितपराजितसुमेरुणा श्रीचि[त्र]कूटभौमस्वर्गतयथार्थीकरणचारुतरपथेन मेदपाटसमुद्रसंभवरोहिणीरमणेन अरिराजमत्तमातंगयवनेन प्ररूढपत्रयवनदवदहनदवानलेन प्रत्यर्थिपृथिवीपतितिमिरततिनिराकरणप्रौढप्र (in a different hand on another page) इति श्रीजगदीशवनदेवनिजगणेन ॥ १ ॥ जगदीश्वरीकामेश्वरीचरणकिङ्करेण ॥ २ ॥ कामाक्षागिरिविभुना ॥ ३ ॥ अध्युष्टतमनरेश्वरेण ॥ ४ ॥ भीष्मपुरजयानीतानेकराजकन्यारत्नेन ॥ ५ ॥ श्रीपुरग्रहणसंवर्द्धितयशोभरेण ॥ ६ ॥ वाटिकाचलग्रहणजनितकीर्त्तिपुरपराजिताचलनायकेन ॥ ७ ॥ संगमनीरदुर्गोद्धरणोद्धृतसकलमण्डलाधीश्वरेण ॥ ८ ॥ दमनपुरविध्वंसनबंदीकृतयवनीनिचयेन ॥ ९ ॥ महिषमेरुजयाजेयविभवेन ॥ १० ॥ शाकंभरीरमणपरिशीलनपरिप्राप्तशाकंभरीपरितोषितशाकंभरीप्रमुखशक्तित्रयेण ॥ ११ ॥ अष्टादशगिरिशिखरपरिवारितांजनाद्रिविजयविख्यातवीर्यगर्वेण ॥ १२ ॥ महदंबमातृकापुरोद्धूलनधर्षितमहोरगपुरेण ॥ १३ ॥ श्रीवनदेवस्वामिप्र(?प्रा)सादरचनापरपरमेश्वरेण ॥ १४ ॥ श्रीत्र्यंबकेश्वरसन्निधिकीर्त्तिस्तंभोन्नतजयस्तंभेन ॥ १५ ॥ श्रीब्रह्मगिरिभौमस्वर्गतायथार्थीकरणरचितचारुपथेन ॥ १६ ॥ श्रीकामक्षागिरिनवीननिर्मितिपराजितसुमेरुणा ॥ १७ ॥

श्रीमहिषाचलोपरिश्रीहरिशरणरचिताचलदुर्गेण ॥ १८ ॥ अभिनवभरताचार्येण ॥ १९ ॥ वीणावादनप्रवीणेन ॥ २० ॥ यवनकुलाकालकालरात्रिरूपेण ॥ २१ ॥ त्रिसंध्यक्षेत्र-समुद्रसंभवरोहिणीरमणेन ॥ २२ ॥ परमभागवतेन ॥ २३ ॥ महाराजाधिराजमहाराणा श्री[मृगाङ्क]नामराजेन्द्रनन्दनेन ॥ २४ ॥ महाराज्ञीसौभाग्यवतीजसमांबिकाहृदयनन्दनेन ॥ २५ ॥ सकलसीमंतिनीशिरोमणिनिकुंभराजन्यवंशावतंसमहाराज्ञीश्रीकर्मवती–लखुमा-देवीहृदयाधिनाथेन ॥ २६ ॥ इति महाराजाधिराजकालसेनमहीन्द्रेण विरचिते सङ्गीतराजे षोडशसाहस्र्यां सङ्गीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे अङ्गोल्लासे आहार्याभिनयलक्षणम् । चतुर्थं परीक्षणं समाप्तम् । उल्लासश्च प्रथमः समाप्तः ।

द्वितीयोल्लासे प्रथमं परीक्षणम् ।

[मङ्गलम् ।]

एकं निधाय सममस्य च[1] जानुशीर्षे पादं परं रचितकुञ्चितमुद्धृतं च[1] ।
वन्दे शिवं सवरदाभयदानहस्तं [2]नेत्रामृतैः सतत[3]साध(? स्थान)-
कमाप्तवन्तम् ॥ १

*

[स्थानकानि ।]

अथ स्थानानि [4]वक्ष्यामो मार्गदेशीविभेदतः ।
चारी चरणमाख्यातं स्थित्वा तद्व्यवतिष्ठते ॥ २
यतश्चार्यादिकं सर्वं स्थाने स्थाने [5]कृतं भवेत् ।
अतः स्थानं प्रधानत्वात् सर्वस्यादौ प्रपञ्च्यते ॥ ३
वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं भवेत् ।
आलीढप्रत्यालीढे च स्थानषट्कं नृणामिति ॥ ४
आयातं चावहित्थं च तथाश्वक्रान्तमित्यपि ।
गतागतं च वलितं मोटितं विनिवर्तितम् ॥ ५
इत्याचार्यमते ख्यातं स्त्रीणां स्थानकसप्तक[6]म् ।
स्वस्तिकं वर्धमानाख्यं [7]नन्द्यावर्तं च संहतम् ॥ ६
समपादं चैकपादं पृष्ठोत्तानतलं तथा ।
चतुरस्रं पार्ष्णिविद्धं पार्ष्णिपार्श्वगतं तथा ॥ ७
एकपार्श्वगतं तस्मादेकजानुनतं ततः ।
परावृत्तं समसूचि तथा विषमसूच्यपि ॥ ८
खण्डसूचि ततो ब्राह्मं वैष्णवं शैवगारुडे ।
कूर्मासनं नागबन्धं वृषभासनमित्यपि ॥ ९
इति देशीस्थानकानां विंशतिर्त्र्यधिका स्मृता ।
स्वस्थं मदालसं क्रान्तं स्या[8]द्विष्कम्भितमुत्कटम् ॥ १०
स्रस्तालसं[9] जानुगतं मुक्तजानुविमुक्तकम् ।
उपविष्टस्थानकानां नवकं भारते मते ॥ ११
सममाकुञ्चितं स्थानं प्रसारितविवर्तिते ।
उद्वाहितं नतं चेति सुप्तस्थानानि षण्नृणाम् ॥ १२

---

1 C drops च at both the places । 2 AB तत्रा । 3 C ततयाधिक । 4 AB वक्ष्यामार्ग । 5 AB कृतेभवत् । 6 B सप्तमम् । 7 B नाद्य । 8 AB विष्कुंभित । 9 AB °लग्नं । C °लकं । but compare its description v. 82

एवं समासतः पुंसां षट् स्त्रीणां तु सप्त च[1] ।
[2]देशीयस्थानकानां च त्रयोविंशतिरित्यथ ॥ १३
नवासने च षट् सुप्तौ सर्वाणि मिलितानि तु ।
एकपञ्चाशदाचष्ट पञ्चाशत्कोटिभूपतिः ।
अथ लक्षणमेतेषां वक्ष्ये लक्ष्मविदां मुदे ॥ १४

*

[पुरुषस्थानकानि ।]

एकः पादः समो यत्र स्वपक्षे त्र्यस्रितः परः ।
सार्द्धद्वितालान्तरितो जङ्घा किञ्चिन्नता स्थिता ॥ १५
विष्णुदैवतमेतत् स्याद् वैष्णवं सौष्ठवाश्रितम्[3] ।
उत्तमैर्मध्यमैः पुंभिः प्रयोज्यं मुनिसंमतात् ॥ १६
प्रकृतिस्थस्य [4]संलापेऽनेककार्यान्तरान्विते ।
प्रयोज्यं प्रतिशीर्षेण विष्णोश्चेत्यपरेऽभ्यधुः ॥ १७
अपरे नाटयकर्त्रेति सूत्रधारादिना जगुः ।
पादः पक्षस्थितः सोऽत्र यः पार्श्वाभिमुखाङ्गुलिः ॥ १८
स एव त्र्यस्रः किञ्चिचेत् पुरोदेशाभिमुख्यभाक् ।
अन्तरालं यदत्र स्यात् प्रसृताङ्गुष्ठमध्ययोः ॥ १९
तदेव तालसंज्ञं स्यादिति नृत्यविदो विदुः ।
उरः समुन्नतं यत्र कूर्परांसशिरः समम् ॥ २०
कटीजानुसमासन्नं गात्रं तत् सौष्ठवं मतम् ।
अङ्गं स्वस्थानविश्रान्तं सन्नमित्यभिधीयते ॥ २१
अचलस्थितिसंयुक्तं निषण्णमिति कीर्त्यते ।
सौष्ठवेऽङ्गमनत्युच्चमचञ्चलमकुब्जकम् ॥ २२
चलपादं च तत् कार्यं नृभिरुत्तममध्यमैः ।
वैष्णवं स्थानमेतच्च चतुरस्रस्य जीवनम् ॥ २३
पृथक्कटीनाभिचरौ करौ वक्षः समुन्नतम् ।
वैष्णवं स्थानकं यत्र चतुरस्रं तदुच्यते ॥ २४

॥ इति वैष्णवं स्थानम् ॥ १ ॥

*

---

1 ABC give the line एकपञ्चाशदायष्ट etc; but A has marks of delition. 2 B दीशीय० । 3 ABC सोष्ठवाच्छितम् । but भ. को. सौष्ठवाश्रितम् पृ. ६४६.
4 ABC संलेपनेक cf संलापे नानाकार्यान्तरान्विते सं. र. अ. ७ श्लो. १०३३.

एकतालान्तरौ पादौ समावङ्गे च सौष्ठवम् ।
समपादं च तद् ज्ञेयं चतुराननदैवतम् ॥ २५
एतच्चोर्ध्वनिरीक्षायां स्वीकारे णा(? चा)शिषां तथा ।
लिगि(? ङ्गि)व्रतिविमानस्थस्यन्दनस्थेषु युज्यते ।
मध्यमानां विहङ्गानां कन्यावरकुतूहले ॥ २६

॥ इति समपादम् ॥ २ ॥

*

नभस्यूरू निषण्णौ चेत् सार्धतालत्रयान्तरे ।
भूमेरूर्ध्वं चरणयोस्तावदेवान्तरं भुवि ॥ २७
त्र्यस्रपक्षस्थयोर्यत्र वैशाखं स्थानकं तु तत् ।
वैशाखदैवतं स्थूलपक्षिणां वीक्षणे मतम् ।
अश्वानां वाहने वेगदाने प्रेरणकर्मणि ॥ २८

॥ इति वैशाखम् ॥ ३ ॥

*

एकतालान्तरौ त्र्यस्रौ पादौ पक्षस्थितौ भुवि ।
कटीजानुसमावूरू सार्धतालद्वयान्तरे ॥ २९
निषण्णौ गगने तत् स्यान्मण्डलं शक्रदैवतम् ।
चतुस्तालान्तरौ केचिन्मण्डले चरणं (?णौ) जगुः ॥ ३०
वीक्षणे गरुडादीनां नियोज्यं गरुडवाहने ।
धनुर्वज्रादिशस्त्राणां मोक्षणे च मुनेर्मतात् ॥ ३१

॥ इति मण्डलम् ॥ ४ ॥

*

व्योम्नि वामो निषण्णोरुः पूर्वमानेन दक्षिणः ।
अग्रे प्रसारितः पञ्चतालं[1] त्र्यस्रं च तद्द्वयम् ॥ ३२
आलीढं स्थानकं तत्तु विज्ञेयं रुद्रदैवतम् ।
ईर्ष्याक्रोधकृतो जल्पः [2]कार्यस्तेनोत्तरोत्तरः ॥ ३३
वीररौद्रकृतं मल्लसंघर्षास्फोटमादिकम् ।
अस्मिन् संधाय शस्त्राणि प्रत्यालीढं समाश्रयेत ॥ ३४

॥ इत्यालीढम् ॥ ५ ॥

*

1 ABC °तालां cf पञ्चतालं प्रसारितः । सं. र. अ. ७ श्लोक १०४९. 2 ABC कार्यो नेतो० cf. कार्यस्तेनोत्तरोत्तरः । सं. र. अ. ७ श्लो. १०५०.

एतद्विपर्ययात्प्रत्यालीढं रुद्राधिदैवतम् ।
संधानीकृतशस्त्रस्य प्रत्यालीढेन मोचनम् ॥ ३५

॥ इति प्रत्यालीढम् ॥ ६ ॥

*

प्राचां चतुर्णामेतेषां प्रयोगो नाट्यनृत्तयोः ।
नाट्यैकगोचरस्तज्ज्ञैरन्त्ययोः परिदृश्यते ।
नर्तने स्थानषट्कस्य केचित् पञ्चविधेऽभ्यधुः ॥ ३६

॥ इति षट्पुरुषस्थानकानि ॥

*

[स्त्रीस्थानकानि ।]

आयतं स्थानकं तत्तु यत्र तालान्तरे स्थितः ।
वामस्त्र्यस्रो दक्षिणश्च समो वक्षः समुन्नतम् ॥ ३७
प्रसन्नं वदनं हस्तो नितम्बे दक्षिणोऽपरः ।
समः समुन्नता चात्र कटी पद्माधिदैवतम् ॥ ३८
एतदाभाषणे कार्यं सखीप्रियतमादिभिः ।
कर्तुं समीह(?हि)तासु स्यात् कृ(? क्ष)तासु च गतिष्विदम्॥ ३९
रङ्गावतरणारम्भे पुष्पाञ्जलिविसर्प(?र्ज)ने ।
आवाहने विसर्गे च तर्जने प्रतिषेधने ॥ ४०
मानावलम्बने गर्वे गाम्भीर्येऽमर्षकर्मणि ।
ईर्ष्याभिलाषप्रभवे स्त्रीणामङ्गुलिमोटने ॥ ४१
एतत् स्त्रीस्थानकं कार्यं प्रवेशे पुरुषैरपि ।
केचनोचुः[1] स्त्रीभिरेव पूर्वरङ्गे प्रयुज्यते ॥ ४२
प्रविष्टेष्वपि पात्रेषु त्वभिनेयानभि(? ति)क्रमात् ।
एतत् स्थानं प्रयोक्तव्यमिति केचन मन्वते ॥ ४३
इदं स्थानं प्रयुज्याथ रङ्गावतरणादयः ।
कर्तव्या हस्तपादादिप्रचारे रुचिरैर्युताः ॥ ४४

॥ इत्यायतम् ॥ १ ॥

*

एतत्पादविपर्यासादवहित्थं प्रकीर्तितम् ।
दुर्गाधिदैवतं चैतदवहित्थस्य सूचकम् ॥ ४५
स्वाभाविके च संलापे तुष्टौ चिन्ताविचारयोः ।

1 ABC केचनोप्यू° ।

विस्मये च विलासे च वरभार्यावलोकने ।
लीलायां भूरिसौभाग्यगर्वजे स्वाङ्गवीक्षणे ॥ ४६

॥ इत्यवहित्थम् ॥ २ ॥

*

एकः पादः समस्तस्य[1] पार्ष्णिदेशं गतोऽपरः ।
सूचीतालान्तरे चाथ समः पार्श्वे स्वके स्थितः ॥ ४७
अश्वक्रान्तं तदा ज्ञेयं भारती चास्य दैवतम् ।
अश्वस्यारोहणारम्भे स्खलिते गोप्यगोपने ॥ ४८
प्रसूनस्तबकादाने तरुशाखावलम्बने ।
स्वाभाविके च संलापे विगलद्वस्त्रधारणे ।
विभ्रमे ललिते चैव प्रयोक्तव्यमिदं स्मृतम् ॥ ४९

॥ इत्यश्वक्रान्तम् ॥ ३ ॥

*

गतिं कर्तुं समुदिता यत्रोद्धृत्यैव नर्तकी ।
एकं पादमुदास्ते तदगतं न (? च)गतं तथा ।
गतिस्थित्योर्निरोधेन स्थानकं स्याद्गतागतम् ॥ ५०

॥ इति गतागतम् ॥ ४ ॥

*

किञ्चिद्विवलितं गात्रं तद्दिक्षु चरणो यदा ।
कनिष्ठाश्लिष्टभूपृष्ठो भूलग्नाङ्गुलिकापरः ।
तदैतद्वलितं ज्ञेयं साभिलाषविलोकने ॥ ५१

॥ इति वलितम् ॥ ५ ॥

*

एकः पादः समस्त्वन्यः कुञ्चितोर्ध्वतलाङ्गुलिः ।
अग्रे तथोर्ध्वगो हस्तो कर्कटो मोहि(? टि)ताभिधे(? धम्) ।
कामावस्थासु सर्वासु विनियोगोऽस्य कीर्तितः ॥ ५२

॥ इति मोटितम् ॥ ६ ॥

*

परिवर्तनतोऽङ्गानां पृष्ठतो विनिवर्तते(? र्तितम्) ॥ ५३

॥ इति विनिवर्तितम् ॥ ७ ॥

॥ इति सप्त स्त्रीस्थानकानि ॥

*

---

1 BC drop स्य ।

[देशीस्थानकानि ।]

मिथः श्लिष्टकनिष्ठौ च चरणौ कुञ्चितौ यदा ।
स्वस्तिकौ संहतस्थाने स्वस्तिकं कीर्तितं तदा ॥ ५४

॥ इति स्वस्तिकम् ॥ १ ॥

*

तिर्यञ्चौ चरणौ पार्ष्णिसंगतौ वर्धमानके ॥ ५५

॥ इति वर्धमानम् ॥ २ ॥

*

चरणौ वर्धमानस्थौ वितस्त्यन्तरितौ यदा ।
षडङ्गुलान्तरौ यद्वा नन्द्यावर्तं तदोदितम् ॥ ५६

॥ इति नन्द्यावर्तम् ॥ ३ ॥

*

अङ्गुष्ठौ च तथा गुल्फौ पादयोश्चेन्मिथो युतौ ।
देहे स्वाभाविके तत् स्यात् संहतं स्थानकं वरम् ।
विनियोगोऽस्य कथितः पुष्पाञ्जलिविसर्जने ॥ ५७

॥ इति संहतम् ॥ ४ ॥

*

देहः स्वाभाविको यत्र वितस्त्यन्तरितौ समौ ।
पादौ तत् समपादाख्यं समाम्नातं महीभृता ॥ ५८

॥ इति समपादम् ॥ ५ ॥

*

समस्यैकस्य पादस्य जानुमूर्ध्नि यदीतरः ।
बाह्यपार्श्वेन लग्नोऽङ्घ्रिर्बाह्यपार्श्वे तदादिशत् ।
एकपादं मुनिश्रेष्ठः स्थानकं स्थानवित्तमः ॥ ५९

॥ इत्येकपादम् ॥ ६ ॥

*

भूमिलग्नाङ्गुलीपृष्ठः पश्चात्पादस्तथैककः ।
परापरः समो यत्र पृष्ठोत्तानतलं हि तत् ॥ ६०

॥ इति पृष्ठोत्तानतलम् ॥ ७ ॥

*

अष्टादशाङ्गुलं यत्र वर्धमानस्थपादयोः ।
अन्तरं चतुरैः प्रोक्तं चतुरस्रं मनोहरम् ॥ ६१

॥ इति चतुरस्रम् ॥ ८ ॥

*

पार्ष्णिविद्धे भवेत्पार्ष्णिरङ्गुष्ठश्लेषिणी सदा ॥ ६२

॥ इति पार्ष्णिविद्धम् ॥ ९ ॥

*

पार्ष्णिः पार्श्वान्तरस्थान्तः पार्ष्णिपार्श्वगते भवेत् ॥ ६३

॥ इति पार्ष्णिपार्श्वगतम् ॥ १० ॥

*

समपादाग्रतः किञ्चिदपरश्चरणौ यदा ।
बाह्यपार्श्वतस्तिर्यक् स्यादेकपार्श्वगतं तथा ॥ ६४

॥ इत्येकपार्श्वगतम्[1] ॥ ११ ॥

*

समस्य चरणस्यान्यश्चतुरङ्गुलमानतः ।
तिर्यकुञ्चितजानुः स्यादेकजानुनते भवेत् ॥ ६५

॥ इत्येकजानुनतम् ॥ १२ ॥

*

पार्ष्ण्यां समौ परावृत्ते कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ मतौ ॥ ६६

॥ इति परावृत्तम् ॥ १३ ॥

*

द्वावङ्घ्री पार्ष्णिजङ्घोरुश्लिष्टभूमी प्रसारितौ ।
तिर्यग् भवेतां चेत् स्थानं समसूचि [त]दोदितम् ॥ ६७

॥ इति समसूचि ॥ १४ ॥

*

युगपत् पुरतः पश्चात् सूचीपादौ प्रसारितौ ।
पृथग्वा कथितं स्थानं प्राज्ञैर्विषमसूचि तत् ।
चरणौ भूमिसंलग्नजानुगुल्फौ कचिन्मतौ ॥ ६८

॥ इति विषमसूचि ॥ १५ ॥

*

भूसंलग्नोरुपार्ष्णिः स्यादेकस्तिर्यक् प्रसारितः ।
अन्योऽङ्घ्रिः कुञ्चितो यत्र खण्डसूचि मतं तदा ॥ ६९

॥ इति खण्डसूचि ॥ १६ ॥

*

समस्याङ्घ्रेः परः पादः कुञ्चितीकृत्य पृष्ठतः ।
जानुसंधिसमत्वेनोत्क्षिप्तस्तद् ब्राह्ममुच्यते ॥ ७०

॥ इति ब्राह्मम् ॥ १७ ॥

*

एकं कृत्वा समं पादमीषदन्यस्तु कुञ्चितः ।
पुरः प्रसारितस्तिर्यगेतत् स्याद्वैष्णवं तदा ॥ ७१

॥ इति वैष्णवम् ॥ १८ ॥

*

---

1 ABC °तकम् ।

समस्याङ्घ्रेस्तु सव्यस्य जानुशीर्षसमः परः ।
उद्धृतो दक्षिणः पादः कुञ्चितः शैवमत्र तत् ॥ ७२

॥ इति शैवम् ॥ १९ ॥

*

वामोऽग्रे कुञ्चितः पश्चादन्यः पादस्तु जानुना ।
पृथिवीं संश्रितो यत्र गारुडं स्यात्तदासनम् ॥ ७३

॥ इति गारुडम् ॥ २० ॥

*

वामः समः परो जानुबाह्यगुल्फमिलत्क्षितिः ।
चरणो विद्यते यत्र तत् कूर्मासनमीरितम् ॥ ७४

॥ इति कूर्मासनम् ॥ २१ ॥

*

दक्षिणां तु यदा जङ्घां वामोरोः पृष्ठदेशगाम् ।
विदधात्युपविष्टः सन् नागबन्धं तदादिशेत् ॥ ७५

॥ इति नागबन्धम् ॥ २२ ॥

*

जानुनी भूमिसंलग्ने संयुते वियुते तथा ।
सौष्ठवाधिष्ठितं चाङ्गं तदा स्याद्वृषभासनम् ॥ ७६

॥ इति वृषभासनम् ॥ २३ ॥

॥ इति त्रयोविंशतिर्देशी[1] स्थानकानि ॥

*

[उपविष्टस्थानानि ।]

हस्तावूरू कटिन्यस्तौ हृदयं किञ्चिदुन्नतम् ।
विस्तारिताञ्चितौ पादौ स्थानं तत् स्वस्थमुच्यते ॥ ७७

॥ इति स्वस्थम् ॥ १ ॥

*

आसनं संश्रितस्त्वेकः[2] परः किञ्चित्प्रसारितः ।
शिरः पार्श्वगतं यत्र तन्मदालसमीरितम् ।
विपदौत्सुक्यनिर्वेदमदेषु विरहेषु तत् ॥ ७८

॥ इति मदालसम् ॥ २ ॥

*

किञ्चिद्बाष्पकले नेत्रे बाहुशीर्षगतं शिरः ।

---

1 ABC °तिदे° । 2 ABC एकपरः cf. एकः प्रसारितः किञ्चिदन्योऽङ्घ्रिस्त्वासनाश्रितः । सं. र. अ ७. श्लो १०९६

चिबुकक्षेत्रगौ हस्तौ क्रान्तमेतदुदीरितम् ।
शोके ग्लाने निर्जिते च विगृहीते नियुज्यते ॥ ७९

॥ इति क्रान्तम् ॥ ३ ॥

*

नेत्रे निमीलिते पादौ यत्र विस्तारिताश्चितौ ।
भुजौ विस्तारितावूर्वोर्विष्कम्भि[1]तमिदं मतम् ।
भटा(?द्रा)सने त्वनावृष्टे(?)नियुक्तं ध्यानयोगयोः[2] ॥ ८०

॥ इति विष्कम्भितम् ॥ ४ ॥

*

समौ पादावासनं च सममस्पृष्टभूतलम् ।
स्थानं तदुत्कटं योगध्यानसंध्याजपादिषु ॥ ८१

॥ इत्युत्कटम् ॥ ५ ॥

*

शरीरमलसं नेत्रे मन्थराकारधारिणी ।
हस्तौ स्रस्तौ विमुक्तौ च तदा स्रस्तालसं मतम् ।
व्याधिमूर्च्छामदग्लानिहानिभीतिषु तन्मतम् ॥ ८२

॥ इति स्रस्तालसम् ॥ ६ ॥

*

जानुनी भूमिसंस्थे चेत् स्थानं जानुगतं तदा ।
होमे देवार्चने दीनयाचने मृगदर्शने ।
क्रुद्धप्रसादने चैतत् कुसत्त्वत्रासने तथा ॥ ८३

॥ इति जानुगतम् ॥ ७ ॥

*

मुक्तजानूत्कटस्यैव जान्वेकं भूमिपृष्ठगम् ।
हवने सान्त्वने चैव सज्जने साधुकर्तृके ।
प्रसादने मानिनीनां विनियुक्तं महर्षिभिः ॥ ८४

॥ इति मुक्तजानु ॥ ८ ॥

*

भूमिपातो विमुक्तं स्याद्धानि(? व)क्रन्दादिषु स्मृतम् ॥ ८५

॥ इति विमुक्तकम् ॥ ९ ॥

॥ इति नवोपविष्टस्थानानि ॥

*

---

1 ABC विष्कुम्भितम् । but see verse 10 and the footnote. 2 ABC धान्य । cf. योगे ध्याने भवेदेतत् स्वभावेन यदासने । सं. र. अ. ७ श्लो. ११००.

[सुप्तस्थानकानि ।]

उत्तानवदनं सुप्तं स्रस्तमुक्तकरं समम् ॥ ८६

॥ इति समम् ॥ १ ॥

*

आकुञ्चितं स्यादाविद्धजानु चाकुञ्चिताङ्गकम् ।
शीतार्ताभिनये तस्य विनियोगः स्मृतो बुधैः ॥ ८७

॥ इत्याकुञ्चितम् ॥ २ ॥

*

प्रसारिते भुजामेकामुपधाय प्रसारिते ।
सुप्तं जानुनि तत्स्थानं सुखसुप्ते प्रकीर्तितम् ॥ ८८

॥ इति प्रसारितम् ॥ ३ ॥

*

शस्त्रक्षतादिके सुप्तमधोवक्त्रं विवर्तितम् ॥ ८९

॥ इति विवर्तितम् ॥ ४ ॥

*

कूर्पराधिष्ठितक्षोणि स्कन्ध[1]न्यस्तशिरस्तथा ।
सुप्तमुद्वाहितं प्रोक्तं प्रभोर्लीलाद्यवस्थितौ ॥ ९०

॥ इत्युद्वाहितम् ॥ ५ ॥

*

सुप्तं स्रस्तकरद्वंद्वमीषत्प्रसृतजङ्घकम् ।
तत् स्थानकं नतं खेदश्रमालस्यादिषु स्मृतम् ॥ ९१

॥ इति नतम् ॥ ६ ॥

॥ इति षट् सुप्तस्थानकानि ॥

*

ध्यानं वैष्णवमन्वहं प्रकुरुते शैवं तदा पूजनं
ब्राह्मं धर्ममधिष्ठिते(? तं)न कुरुतेऽन्यस्मै नतं स्वं शिरः ।
यत् स्वस्थं च मदालसं गतमतः क्रान्तं दुहृन्मण्डलं
सोऽयं सांप्रतमुत्कटं वितनुते तन्नागबन्धं सुधीः ॥ ९२

इति श्रीराजाधिराजश्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते संगीतराजे षोडशसाहस्र्यां सङ्गीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे चारिकोल्लासे स्थानकपरीक्षणं प्रथमं समाप्तम् ।

---

1 ABC स्कन्धं न्य° । compare स्कन्धन्यस्तशिरः । सं र. अ. ७ श्लो. ११०९. C drops the whole verse.

द्वितीयोल्लासे द्वितीयं परीक्षणम् ।

विश्लिष्टा हरिणप्लुतानि दधती तिर्यङ्मुखा कातरा
जङ्घालङ्घनिकां गतिं प्रकुरुते तन्मन्द्रिणा ताडिता ।
विद्युद्भ्रान्तिवशेन वैरिवनिता यस्योरुवेणीयुतेः
संत्रासं भुजगोचितं विदधती नो कस्य हास्यास्पदम् ॥ १

*

[चारी ।]

चारीपदं तत्र चरेर्हि धातोरियं ततो ङीषि च भाव इष्टम् ।
कराश्रितस्तच्चरणप्रदिष्टस्तत्साधकत्वेऽतिशयेन धीरैः ॥ २
विचित्रजङ्घाचरणोरुकट्यश्रिताक्रियाङ्गैर्गदितात्र चारी ।
भेदांस्तदीयानभिदध्महेऽतो मुनिप्रणीतं निगमं निरीक्ष्य ॥ ३
तत्राङ्घ्रिणैकेन हि जायमाना चारीति चार्यैव तु कथ्यतेऽत्र ।
सैवात्र पादद्वयनिर्मिता चेच्चारी प्रदिष्टा करणं मुनीन्द्रैः ॥ ४
नृत्तस्य चोक्तं करणात्पृथक्त्वेनैतद्यतोऽदश्चरणप्रधानम् ।
सैवेह धा(?चा)रीकरणत्रये[ण] विनिर्मिता खण्डमिति प्रसिद्धा ॥ ५
तैर्वा चतुर्भिस्त्रिभिरेव साध्या चारी स(?म)ता मण्डल[1]मत्र खण्डैः ।
त्र्यस्रे भव(?वे)द्या त्रिभिरत्र खण्डैः खण्डै[श्चतुर्भि]श्चतु[र]स्रके तु ॥ ६
सेयं प्रदिष्टा द्विविधेह भौमीत्याकाशिकीत्येव च मार्गजाताः ।
प्रत्येकशः षोडश भूमिजाता आकाशजा[2] देशभवा द्विधा च ॥ ७
त्रिंशत्सपञ्चाः किल भौम्य इष्टा एकोनिता विंशतिरभ्रजाताः ।
पञ्चाशदुक्ता अधिकाश्चतुर्भिरुभय्य एवं मिलितास्तु जाताः ॥ ८
तन्मार्गजा देशभवा मिलित्वा जाताश्च चार्यः षडशीतिसंख्याः ।
हस्ते तथा चाभिनये च गत्यां पादो यदा यो नटकेप्सितः स्यात् ॥ ९
तदीयसंपत्त्युचितात्र चारी कार्या परा तूचितमादधाना ।
अन्योन्यमेवं नियमादियं तु व्यायामवाच्या भवतीह चारी ॥ १०
अथोद्दिशामः खलु ताः समस्ता विभज्य चारीर्मुनिसंमतेन ।
तल्लक्षणं चाभिदधे निरीक्ष्य मुनिप्रणीतान्निखिलान्निबन्धान् ॥ ११

*

1 BC मंत्र° । In A the anusvāra is scratched. 2 ABC आकाशजाता-देशभवा द्विधा व च ।

[मार्गचार्यः ।]

समपादा स्थितावर्ता शकटास्या च विच्यवा ।
अध्यर्धिका चाषगतिरेलकाक्रीडिता तथा ॥ १२
समोत्सरितमत्तल्लीमत्तल्युत्खण्डिताड्डिता ।
स्पन्दितापस्पन्दिताख्या बद्धा च जनिताभिधा ॥ १३
ऊरूद्वृत्तेत्यथ ब्रूमः षोडशाकाशिकीरिमाः ।
अतिक्रान्ताप्यपक्रान्ता पार्श्वक्रान्ता मृगप्लुता ॥ १४
ऊर्ध्वजानुरलाता च सूची नूपुरपादिका ।
दोलापादा दण्डपादा विद्युद्भ्रान्ता भ्रमर्यपि ॥ १५
भुजङ्गत्रासिता क्षिप्ता विद्धोद्वृत्तेति कीर्तिता ।
भरताभिमताश्चार्यो द्वात्रिंशन्मिलितास्तु ताः ॥ १६

*

[भौम्यश्चार्यः ।]

[1]स्थानेन समपादेन कृत्वा पादौ निरन्तरौ ।
नटः समनखौ तिष्ठेत् समपादा तदोदिता ॥ १७
मनु(? सा तु) चारी चरणतो(? तः)प्रोक्ता कथमियं तथा ।
यतः स्थानसमा नैवं प्रचारस्य तु योग्यताम् ।
अङ्गीकृत्य प्रवृत्तेयं चारीस्थानेऽप्यसौ ततः ॥ १८

॥ इति समपादा ॥ १ ॥

*

चरणान्तरपार्श्वं चेन्नीत्वाग्रतलसञ्चरः ।
अन्तर्जानु स्वस्तिकत्वं प्राप्यते च तथेतरः ॥ १९
स्वपार्श्वे नीयते पादो विकृष्यैतेन चेत्तदा ।
स्थितावर्ता भवेच्चारी,

॥ इति स्थितावर्ता ॥ २ ॥

*

शकटास्या पुनर्यथा ॥ २०

प्रसारितो भवेद्यत्र पादोऽग्रतलसञ्चरः ।
उद्वाहितमुरो देहपूर्वभागः समुन्नतः ।
शकटक्षेपणे चास्या विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ २१

॥ इति शकटास्या ॥ ३ ॥

*

---

1 BC स्नानेन; cf. स्थानकं समपादाख्यमास्थाय धरणौ क्रमात् । वेमः in भ. को. पृ. ७०३.

विच्युतौ समपादात(? या)श्चरणौ चेत्तलाग्रतः ।
निकुट्टयेतां धरिणीं विच्यवा प्रोच्यते तदा ॥ २२

॥ इति विच्यवा ॥ ४ ॥

*

वामः पादो दक्षिणांह्रेः पार्श्वदेशे निपात्यते ।
ततोऽपसृत्य दक्षः स्वे पार्श्वे त्र्यस्रतया स्थितः ॥ २३
सार्धतालान्तरत्वेन वामे पार्श्वे तथैव चेत् ।
दक्षिणो जायते त्र्यस्रस्तदा साध्यर्धिका भवेत् ॥ २४

॥ इत्यध्यर्धिका ॥ ५ ॥

*

दक्षिणे(? णा)ङ्घ्रिं तालमात्रं पुरः सृ(? कृ)त्वा द्वितालिकाम् ।
पृष्ठे याते समं पादावीषदुत्प्लुतिपूर्वकम् ॥ २५
द्रुतोत्प्लुतोऽपसृत्यैव चरणावुपसर्पतः ।
पुनरुत्प्लुत्योऽपसृत्य कुर्यातामुपसर्पणम् ।
संत्रासादिव यत्रेयं बुधैश्चाषगतिः स्मृता ॥ २६

॥ इति चाषगतिः ॥ ६ ॥

*

किञ्चिदुत्प्लुत्य पततो यत्राग्रतलसञ्चरौ ।
क्रमेण चरणौ सेयमेलकाक्रीडितोदिता ॥ २७

॥ इत्येलकाक्रीडिता ॥ ७ ॥

*

निहितेऽन्यस्य पादस्य मध्येऽग्रतलसञ्चरे ।
कृते जङ्घास्वस्तिकेऽन्यपादेऽग्रतलसञ्चरे ॥ २८
घूर्णन्तौ यत्र कुर्वातेऽपसृतिं चोपसर्पणम् ।
समोत्सरितमत्तल्ली चारीयं मध्यमे मदे ॥ २९

॥ इति समोत्सरितमत्तल्ली ॥ ८ ॥

*

अर्धत्र्यस्रौ यत्र पादौ जङ्घास्वस्तिकमागतौ ।
भूमिश्लिष्टाखिलतलौ घूर्णन्तौ चोपसर्पतः ।
अथापसर्पतः सोक्ता मतल्ली तरुणे मदे ॥ ३०

॥ इति मतल्ली ॥ ९ ॥

*

अंह्रिः कनिष्ठयाङ्गुल्या तथाङ्गुष्ठेन च क्रमात् ।

रेचकस्यानुसारेण शनैः कुर्याङ्गतागतम् ।
यत्र सोत्खण्डिता हस्तो रेचितोऽत्रेति केचन ॥ ३१

॥ इत्युत्खण्डिता ॥ १० ॥

*

अग्रेण चाथ पृष्ठेन यत्राग्रतलसञ्चरम् ।
ताडयेच्चरणं पादः समः सोक्ताड्डिताभिधा ॥ ३२

॥ इत्यड्डिता ॥ ११ ॥

*

पञ्चतालान्तरं तिर्यगङ्घ्रिर्दक्षः प्रसारितः ।
निषण्णोरुसमो वामः स्पन्दिता सोच्यते बुधैः ॥ ३३

॥ इति स्पन्दिता ॥ १२ ॥

*

एषैवाङ्गविपर्यासाचार्यपस्पन्दिता मता ॥ ३४

॥ इत्यपस्पन्दिता ॥ १३ ॥

*

स्वस्तिकीकृत्य जङ्घे द्वे ऊर्वोर्वलनमाचरेत् ।
भङ्क्त्वाथ स्वस्तिकं पादौ क्रियेतां मण्डलभ्रमम् ।
ततः पार्श्वं गते स्वं स्वं यत्र बद्धेति सा मता ॥ ३५

॥ इति बद्धा ॥ १४ ॥

*

वक्षःस्थो मुष्टिको हस्तः पादोऽग्रतलसञ्चरः ।
अन्यकरा[1] यथाशोभं चारी सा जनितोच्यते ॥ ३६
मुख्या पादक्रिया चास्यामितिकर्तव्यतेतरा ।
एतां देशीविदः केचिदाहुर्मुशलपादिकाम् ॥ ३७

॥ इति जनिता ॥ १५ ॥

*

पार्ष्णिरङ्घ्रेरग्रतलसञ्चरस्य यदा भवेत् ।
अन्याङ्घ्रिपृष्ठाभिमुखी जङ्घा च वलिता यदा ॥ ३८
एतद्विपर्ययाद्वाथ जङ्घा च नतजानुका ।
स्यादन्यजङ्घाभिमुखी लज्जेर्ष्यादौ नियोजिता ॥ ३९
ऊरूद्वृत्ताभिधा चारी चारीविद्भिस्तदोदिता ।

॥ इति ऊरूद्वृत्ता ॥ १६ ॥

*

---

1 ABC अन्यक्यरा ।

नियुद्धयुद्धयोरेता अङ्गहारेषु च स्मृताः ॥ ४०

॥ इति षोडश भौम्यश्चार्यः ॥

*

[आकाशिक्यश्चार्यः ।]

अथ व्योमभवा चार्यो लक्ष्यन्तेऽनुक्रमेण हि ।
एकस्याङ्घ्रेर्गुल्फदेशे पादमुद्धृत्य कुञ्चितम् ॥ ४१
पुरः किञ्चित् प्रसार्याथोत्क्षिप्य प्रकृतिलो(?स्तृतिर्लो)कव[1]त् ।
चतुस्तालान्तरेणाथो पुनरग्रे निपातयेत् ।
अतिक्रान्ताभिधा चारी यत्र सोक्ता मनीषिभिः ॥ ४२

॥ इत्यतिक्रान्ता ॥ १ ॥

*

विधाय बद्धां चारीं चेत् कुञ्चितं पादमुत्क्षिपेत् ।
तमेव निःक्षिपेत् पार्श्वे तदापक्रान्तिका भवेत् ॥ ४३

॥ इत्यपक्रान्ता ॥ २ ॥

*

कुञ्चितं पादमानीयोर्द्ध्वं स्वपार्श्वेन तत्परम् ।
भूमौ चेत् पातयेत् पार्ष्ण्या[2] पार्श्वक्रान्ता तदोदिता ॥ ४४
सा पार्श्वदण्डपादेति प्रसिद्धा तद्विदामियम् ।
अन्योरुक्षेत्रपर्यन्तमुत्क्षिप्य चरणं ततः ।
पृथ्व्यामुद्धट्टितं न्यस्येद्विशेषं केचनाभ्यधुः ॥ ४५

॥ इति पार्श्वक्रान्ता ॥ ३ ॥

*

उत्क्षिप्य कुञ्चितं पादमुत्प्लुत्याधो निपात्य तं ।
पराञ्चितां च जङ्घां च पृष्ठदेशे क्षिपेद्यदा ।
मृगप्लुता तदा चारी ज्ञेया कञ्चुकिकर्तृका ॥ ४६

॥ इति मृगप्लुता ॥ ४ ॥

*

उत्क्षिप्तकुञ्चितस्याङ्घ्रेर्जानु स्तनसमं नयेत् ।
स्तब्धं कुर्यादन्यमङ्घ्रिमेवमङ्घ्र्यन्तरेऽपि चेत् ।
कुर्यात्तदोर्ध्वजानुः स्यादिति चारीविदां मतम् ॥ ४७

॥ इत्यूर्ध्वजानुः ॥ ५ ॥

*

---

1 BC °वित् । 2 ABC पार्ष्ण्यौ पार्श्व° । cf. पातयेत् पार्ष्णिना भूमौ पार्श्वक्रान्ता प्रकीर्तिता । वेमः in. भ. को. पृ. ३६७.

पृष्ठं प्रसृतपादस्य परोर्वभिमुखं तलम् ।
कृत्वा पार्ष्णिः स्वपार्श्वे क्ष्मान्यस्त्व(? स्ता)लाता तदोदिता ॥ ४८

॥ इत्यलाता ॥ ६ ॥

*

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्यास्यैव जङ्घां प्रसार्य च ।
जान्वन्तां वोरुपर्यन्तां तं पादं पातयेद्भुवि ।
अग्रयोगेन यस्यां सा चारी सूचीति कीर्तिता ॥ ४९

॥ इति सूचि ॥ ७ ॥

*

अञ्चितं चरणं नीत्वा पृष्ठतः पार्ष्णिना स्फिजम् ।
स्पृशेत्तं पाद(?त)येदग्रतलेन धरणीतले ।
यत्र सा चारिका प्रोक्ता बुधैर्नूपुरपादिका ॥ ५०

॥ इति नूपुरपादिका ॥ ८ ॥

*

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य पार्श्वयोर्दोलयेत् शनैः ।
पार्ष्ण्यां न्यस्येत् स्वपाऽष्ण्यांत (?स्वपार्श्वान्तं) [1]दोलापादा तदोदिता ॥ ५१

॥ इति दोलापादा ॥ ९ ॥

*

अन्यस्य पार्ष्णिदेशे चेन्नूपुरं चरणं नयेत् ।
स्वदेहदेशाभिमुखं जान्वग्रत्वेन वेगतः ।
अग्रे प्रसार्यते दण्डपादचारी तदोदिता ॥ ५२

॥ इति दण्डपादा ॥ १० ॥

*

पृष्ठतो वलितं शीर्षं स्पृष्ट्वा भ्रान्त्वा च सर्पतः ।
पादः प्रसार्यते यस्यां विद्युद्भ्रान्ता तदोदिता ॥ ५३

॥ इति विद्युद्भ्रान्ता ॥ ११ ॥

*

अतिक्रान्तां विधायामुं पादं त्र्यस्रं विवर्तयेत् ।
त्र्यस्रपादतलभ्रान्त्या भ्राम्यते सकलं वपुः ।
यत्र तां भ्रमरीं चारीमाह चारीविदग्रणीः ॥ ५४

॥ इति भ्रमरी ॥ १२ ॥

*

---

1 cf 'दक्षिणक्षेत्रान्तं स्वपार्श्वे निनीय ततोऽपि स्वपार्श्वे दोलयेदिति दोलाकारेण नयेत्, ततः स्वपार्श्वे पार्ष्ण्या निपातयेत् । अ. गु. on verse ३६. अ. १०. ना. शा. Vol II. (G. O. S.) p. 103. cf also सं. र. अ. ७ श्लो. ९५४.

कुञ्चितं पादमन्योरुमूलदेशान्तमुत्क्षिपेत् ।
पार्ष्णिं नितम्बाभिमुखीं जानु कुर्यात् स्वपार्श्वगम् ॥ ५५
कटीजानुर्विवर्तेनोत्तानं पादतलं तथा ।
भुजङ्गत्रासगमका भुजङ्गत्रासिता तु सा ॥ ५६

॥ इति भुजङ्गत्रासिता ॥ १३ ॥

*

अन्यपार्श्वे नयेत्पादं कुञ्चितीकृत्य यत्र च ।
तालत्रयान्तरोत्क्षिप्तं जङ्घयोः स्वस्तिकं ततः ॥ ५७
कृत्वा तं पातयेद्भूमौ पार्ष्णिभागेन यत्र सा ।
आक्षिप्ता नाम चारी स्यादिति नृत्यविदो विदुः ॥ ५८

॥ इत्याक्षिप्ता ॥ १४ ॥

*

स्वस्तिकीकृत्य विश्लिष्टे जङ्घेऽङ्घ्रिं कुञ्चितं ततः ।
प्रसार्य पातयेत् पार्ष्ण्या परपार्ष्णिसमीपतः ।
स्वपार्श्वे वाथ तां चारीमाविद्धामभणन् बुधाः ॥ ५९

॥ इत्याविद्धा ॥ १५ ॥

*

पादमाविद्धचारीकमन्योरुस्थितपार्ष्णिकम् ।
विधायोत्प्लवनं कृत्वा ततो भ्रमरकं चरेत् ॥ ६०
तन्निपात्य ततो भूमौ तथान्येन समाचरेत् ।
अंह्रिणा यत्र तां चारीमुद्वृत्तां मेनिरे बुधाः ॥ ६१

॥ इत्युद्वृत्ता ॥ १६ ॥

*

आसां शेषस्तु विज्ञेयः परिभाषापरीक्षणे ॥ ६२

॥ इति द्वात्रिंशन्मार्गचारीलक्षणम् ॥

*

इति भरतमतेन मार्गचारी-
नृपनृपतिर्निरदीधरत् समस्ताः ।
रदनपरिमिता विलोक्य धीमा-
नभिनवभारतिकामुखान्नितम्बा(?बन्धा)न् ॥ ६३

इति श्रीराजाधिराजश्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते संगीतराजे नृत्य[रत्न]कोशे चारीकोल्लासे शुद्धचारीपरीक्षणं द्वितीयं [समाप्तम्] ॥

द्वितीयोल्लासे तृतीयं परीक्षणम् ।

[मङ्गलम् ।]

नानादेशेषु यं देवमेककालमुपासकाः ।
पश्यन्ति सदृशाकारं तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ १

*

[देशीचार्यः ।]

अव(?थ)देशी(?श)स्थचारीणामुद्देशः प्रतिपाद्यते ।
रथचक्रा परावृत्ततला नूपुरविद्धिका ॥ २
तिर्यङ्मुखा मराला च करिहस्ता कुलीरिका ।
विश्लिष्टा कातरा पार्ष्णिरेचिताप्यूरुताडिता ॥ ३
ऊरूवेणी तलोद्वृत्ता हरिणत्रासिका परा ।
अर्धमण्डलिका तिर्यकुञ्चिता च मदालसा ॥ ४
सञ्चारितोत्कुञ्चिता च स्तम्भक्रीडनिका ततः ।
चारी लङ्घितजङ्घाख्या स्फुरिताप्यपकुञ्चिता ॥ ५
अपि संघट्टिता खुत्ता स्वस्तिका तलदर्शिनी ।
पुराट्यर्धपुराटी च सरिका स्फुरिका ततः ॥ ६
निकुट्टका लताक्षेपाप्यड्डस्खलितिका परा ।
समस्खलितिका भौम्यः पञ्चत्रिंशदितीरिताः ॥ ७
विद्युद्भ्रान्ता पुरःक्षेपा विक्षेपा हरिणप्लुता ।
अपक्षेपा च डमरी दण्डपादाङ्घ्रिताडिता ॥ ८
जङ्घालङ्घनिकालाता जङ्घावर्ता च वेष्टनम् ।
उद्वेष्टनमथोत्क्षेपः पृष्ठोत्क्षेपश्च सूचिका ॥ ९
विद्धा प्रावृतमुल्लाल[1] इत्यत्रैकोनविंशतिः ।
आकाशिक्य उभय्यस्तु चतुःपञ्चाशदीरिताः ।
अथोद्देशानुरोधेन लक्ष्यन्ते क्रमतस्त्विमाः ॥ १०

*

[देश्यो भौमचार्यः ।]

चतुरस्रं समं कृत्वा संलग्नौ चेत् प्रदर्शयेत् ।
पादावग्रेऽथ पृष्ठे वा रथचक्रा तदा स्मृता ॥ ११
॥ इति रथचक्रा ॥ १ ॥

*

---

1 ABC उल्लास, but verse 60 gives उल्लाल° ।

बहिश्चेत् प्रसृतः पाद उत्तानिततलः पुनः ।
पश्चाद्देशे तदा चारी परावृत्ततला स्मृता ॥ १२

॥ इति परावृत्ततला ॥ २ ॥

*

चरणौ स्वस्तिकीकृत्य पार्ष्ण्योः पादाग्रयोस्तथा ।
रेचितौ यत्र सा ज्ञेया चारी नूपुरविद्धिका ॥ १३

॥ इति नूपुरविद्धिका ॥ ३ ॥

*

वर्धमानं समास्थाय पादौ चेद् द्रुतमानतः ।
सव्यापसव्यं सरतस्तदा तिर्यङ्मुखा भवेत् ॥ १४

॥ इति तिर्यङ्मुखा ॥ ४ ॥

*

नन्द्यावर्तासनाङ्घ्री चेत् पार्ष्णिप्रपदरेचितौ ।
पुरः प्रसारितौ चारी मराला साभिधीयते ॥ १५

॥ इति मराला ॥ ५ ॥

*

संहतं स्थानमास्थाय चरणौ यत्र घर्षति ।
धरणिं पार्श्वदेशाभ्यां करिहस्ता तु सा स्मृता ॥ १६

॥ इति करिहस्ता ॥ ६ ॥

*

नन्द्यावर्तस्थितावङ्घ्री तिर्यग्यस्यां प्रसर्पतः ।
कुलीरिकेति सा प्रोक्ता चारी नृत्यविशारदैः ॥ १७

॥ इति कुलीरिका ॥ ७ ॥

*

विश्लिष्य पार्ष्णिविद्धायाश्चरणावुपसर्पतः ।
यद्वापसर्पतः सोक्ता विश्लिष्टा चारिका बुधैः ॥ १८

॥ इति विश्लिष्टा ॥ ८ ॥

*

नन्द्यावर्तस्थपादौ चेत् सरतः पृष्ठतो यदा ।
कातरा नाम सा चारी,

॥ इति कातरा ॥ ९ ॥

*

सा चोक्ता पार्ष्णिरेचिता ।
यस्यां पार्ष्णिपार्श्वगते स्थाने स्थित्वाथ रेचयेत् ॥ १९

॥ इति पार्ष्णिरेचिता ॥ १० ॥

*

पार्ष्णिरेकपदे स्थाने स्थितो भूम्याङ्घ्रिणात्र चेत् ।
ऊरु ताडयति प्रोक्ता तदोरुताडिता बुधैः ॥ २०

॥ इत्यूरुताडिता ॥ ११ ॥

*

पार्श्वाभ्यां यत्र चरणावूरुस्थस्वस्तिकाकृती ।
क्षितिसंघर्षतश्चारीमूरुवेणीं तदादिशेत् ॥ २१

॥ इत्यूरुवेणी ॥ १२ ॥

*

पादावग्रेऽङ्गुली पृष्ठभागेन सरतो द्रुतम् ।
पुरतश्चेत्तदा चारी तलोद्वृत्तेति संमता ॥ २२

॥ इति तलोद्वृत्ता ॥ १३ ॥

*

तलेऽङ्घ्र्योः स्वस्तिकीकृत्य कुञ्चिते वलितान्तके ।
उत्प्लुत्य निपतेतां चेद्धरिणत्रासिका तदा ॥ २३

॥ इति हरिणत्रासिका ॥ १४ ॥

*

पादौ यदा बहिर्नीतौ भूमिघर्षणतः शनैः ।
आवर्तेते[1] तदा प्राहुरर्धमण्डलिकां बुधाः ॥ २४

॥ इत्यर्धमण्डलिका ॥ १५ ॥

*

तिर्यञ्चं पादमाकुञ्च्य यत्र तं प्रक्षिपेन्मुहुः ।
सा तिर्यक्कुञ्चिता चारी गदिता नृत्यकोविदैः ॥ २५

॥ इति तिर्यक्कुञ्चिता ॥ १६ ॥

*

मत्तवद्यत्र चरणावितश्चेतश्च विह्वलौ ।
स्थाप्येते यत्र तामाहुश्चारीमेतां मदालसाम् ॥ २६

॥ इति मदालसा ॥ १७ ॥

*

यदान्येनाङ्घ्रिणाऽन्योऽङ्घ्रिरुत्क्षिप्योत्क्षिप्य कुञ्चितः ।
युज्यते तिर्यगन्यस्तु सर्पेत् सञ्चारिता तदा ॥ २७

॥ इति सञ्चारिता ॥ १८ ॥

*

एकैकमग्रतः पादौ न्यस्येदुत्क्षिप्य कुञ्चितौ ।

---

1 ABC आवर्त्येते. cf. बहिर्नीतावावर्तेते । सं. र. अ. ७. श्लो. ९८५.

यस्यां सोत्कुञ्चिता नाम,

॥ इत्युत्कुञ्चिता ॥ १९ ॥

*

स्तम्भक्रीडनिका तथा ।
तिर्यक् प्रसृतपादस्य यदा पार्श्वं स्पृशेन्मुहुः ॥ २८
तलेन चान्यपादस्या,-

॥ इति स्तम्भक्रीडनिका ॥ २० ॥

*

-थ स्याल्लङ्घितजङ्घिका ।
खण्डसूच्यभिधे स्थाने तिष्ठन्नंह्रिस्तु वेगतः ।
आकृष्य लङ्घ्यतेऽन्येन चरणेन तदा तु सा ॥ २९

इति लङ्घितजङ्घा ॥ २१ ॥

*

भूस्पृशौ पादपार्श्वौ चेत् सरतो वेगतोऽग्रतः ।
स्फुरिता,

॥ इति स्फुरिता ॥ २२ ॥

*

क्रमतोंऽह्रिभ्यां कुञ्चिताभ्यां तु पृष्ठतः ॥ ३०
गत्यापकुञ्चिता ज्ञेया,

॥ इत्यपकुञ्चिता ॥ २३ ॥

*

स्थाने विषमसूचिके ।
स्थित्वोत्प्लुत्य पतन् पृथ्व्यामंह्री संघट्टयेद्यदा ॥ ३१
सोक्ता संघट्टिता [........................]

॥ इति संघट्टिता ॥ २४ ॥

*

भूम्यां चरणाग्रेण घाततः खुत्ता निगद्यते ॥ ३२

॥ इति खुत्ता ॥ २५ ॥

*

पादोऽथ स्वस्तिकाकारकारितः स्वस्तिको मतः ॥ ३३

॥ इति स्वस्तिकः ॥ २६ ॥

*

स्वस्तिकौ चरणौ यत्र संहतस्थानके स्थितौ ।
तिर्यक् पृथग्गतौ बाह्यपार्श्वाभ्यां भूतलं यदा ।
स्पृशतस्तत्र सा प्रोक्ता चारिका तलदर्शिनी ॥ ३४

॥ इति तलदर्शिनी ॥ २७ ॥

*

पुराटिका मिथोंऽह्रिभ्यामुद्वृत्ताभ्यां निकुट्टनात् ॥ ३५

॥ इति पुराटी ॥ २८ ॥

*

उद्वृत्तस्यैकपादस्य चरणेन निकुट्टनम् ।
उद्वृत्तेन निकुट्टेन सा स्यादर्धपुराटिका ॥ ३६

॥ इत्यर्धपुराटी ॥ २९ ॥

*

सारिका सा सरत्येकश्चरणोऽग्रे[1] यदा तदा ॥ ३७

॥ इति सारिका ॥ ३० ॥

*

समाभ्यां चरणाभ्यां तु स्फुरिका सरणं पुरः ॥ ३८

॥ इति स्फुरिका ॥ ३१ ॥

*

अग्रेणांह्रेः कुञ्चितेन स्थितिः प्रोक्तो निकुट्टकः ॥ ३९

॥ इति निकुट्टकः ॥ ३२ ॥

*

पश्चादन्यस्य पुरस्ताच्च चरणश्चेत् प्रसार्यते ।
भूमिं निकुट्टयेत्तेन लताक्षेपस्तदा भवेत् ॥ ४०

॥ इति लताक्षेपः ॥ ३३ ॥

*

अड्डुस्खलितिका तिर्यक् स्खलिते चरणे भवेत् ॥ ४१

॥ इति अड्डुस्खलितिका ॥ ३४ ॥

*

युगपच्चरणौ यत्र पुरतः पृष्ठतोऽपि च ।
तिर्यक् च स्खलितः प्रोक्ता समस्खलितिका तदा ॥ ४२

॥ इति समस्खलितिका ॥ ३५ ॥

॥ इति पञ्चत्रिंशद्भौमचार्यः ॥

*

[देश्य आकाशचार्यः ।]

पुरस्तादंह्रिमुत्क्षिप्य भ्रामयित्वालिके द्रुतम् ।
भूमौ चेन्न्यस्यते प्रोक्ता विद्युद्भ्रान्ता तदा बुधैः ॥ ४३

॥ इति विद्युद्भ्रान्ता ॥ १ ॥

*

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य वेगाद्विस्तार्य चेत् पुरः ।
विन्यस्येदवनौ सोक्ता पुरःक्षेपाभिधा बुधैः ॥ ४४

॥ इति पुरःक्षेपा ॥ २ ॥

*

1 A एकाश्चरणोग्रे । BC एकाश्चरोग्रे ।

मुहुः प्रसार्य चरणमग्रतो गगनाङ्गणे ।
आकुञ्चयेत्तदा प्रोक्ता विक्षेपा नाम चारिका ॥ ४५

॥ इति विक्षेपा ॥ ३ ॥

*

निपतेतां समुत्क्षिप्य यत्रांह्री संहतौ भुवि ।
हरिणीव तदा चारी विज्ञेया हरिणप्लुता ॥ ४६

॥ इति हरिणप्लुता ॥ ४ ॥

*

ऊरुपृष्ठं स्पृशेदंह्रिर्बाह्यपार्श्वेन यात्यथ ।
अन्यो नितम्बं निकटमपक्षेपा तदा स्मृता ॥ ४७

॥ इत्यपक्षेपा ॥ ५ ॥

*

कुञ्चितश्चरणो यत्र वामतो दक्षतो भ्रमेत् ।
डमरी स्यात्तदा,

॥ इति डमरी ॥ ६ ॥

*

दण्डपादाचारी तदोदिता ।
पादौ स्वस्तिकमावर्त्य तिर्यगूर्ध्वं यदोत्क्षिपेत् ॥ ४८

॥ इति दण्डपादा ॥ ७ ॥

*

यत्र विस्तारितावंह्री प्लुतं कृत्वा परस्परम् ।
गगने ताडयेत्तां चेत् तलेनात्राङ्घ्रिताडिता ॥ ४९

॥ इत्यङ्घ्रिताडिता ॥ ८ ॥

*

ईषदाकुञ्चितं पादमन्यपादेन लङ्घयेत् ।
गगने चेत्तदा प्रोक्ता जङ्घा लङ्घनिका बुधैः ॥ ५०

॥ इति जङ्घालङ्घनिका ॥ ९ ॥

*

अङ्घ्रिणा लङ्घ्यतेऽन्येन चरणः पृष्ठतो गतः ।
तदालाता विनिर्दिष्टा चारीनर्तनकोविदैः ॥ ५१

॥ इत्यलाता ॥ १० ॥

*

बहिर्भ्रमणस्य चरणस्याङ्घ्रेरन्तर्भ्रमस्य च ।
तलं क्रमाज्जानुपार्श्वे जानुपृष्ठे च निःक्षिपेत् ।
जङ्घावर्ता तदा प्रोक्ता चारीनर्तनचञ्चुना ॥ ५२

॥ इति जङ्घावर्ता ॥ ११ ॥

*

एकमन्येन पादेन वेष्टयेद्वेष्टनं तदा ।
तदेव चलनं प्राहुर्नृत्यवर्गणकर्मठाः ॥ ५३
॥ इति वेष्टनम् ॥ १२ ॥

*

उद्वेष्टनं वेष्टयित्वा पृष्ठतोऽङ्घ्रौ प्रसारिते ॥ ५४
॥ इत्युद्वेष्टनम् ॥ १३ ॥

*

पादमाकुञ्चितं पृष्ठे पुरतो वा क्षिपेद्यदि ।
जानुपर्यन्तमुत्क्षेपस्तदा चारी प्रकीर्तिता ॥ ५५
॥ इत्युत्क्षेपः ॥ १४ ॥

*

पृष्ठतोऽस्मिन् प्रयुक्ते च पृष्ठोत्क्षेपो भवेदयम् ॥ ५६
॥ इति पृष्ठोत्क्षेपः ॥ १५ ॥

*

यस्यां विन्यस्य चरणं क्षितौ पार्श्वे नतं पुनः ।
प्रसारयति तीक्ष्णाग्रं सा सूची गदिता बुधैः ॥ ५७
॥ इति सूची ॥ १६ ॥

*

चरणौ स्वस्तिकीकृत्यैकं किञ्चिद्दोलयेत् पुरः ।
कुञ्चितं चरणं यत्र सा विद्धा परिकीर्तिता ॥ ५८
॥ इति विद्धा ॥ १७ ॥

*

उद्वृत्तश्चरणो मूर्तिर्ललिता वलिता भवेत् ।
यत्र तत् प्रावृतं ज्ञेयं कामकेलिविवर्धनम् ॥ ५९
॥ इति प्रावृतम् ॥ १८ ॥

*

क्रमेणोल्लालयेद्यत्र चरणौ गगने नटः ।
उल्लालः स तु विज्ञेयश्चारिकामूर्धसु स्थितः ॥ ६०
॥ इत्युल्लालः ॥ १९ ॥

*

इत्येकोनविंशतिराकाशचार्यः । इत्युभय्यश्चतुःपञ्चाशद्देशीचार्यः ॥
इति षडशीतिर्मार्गदेशीचार्यः ।

देशे देशेषु यत्कीर्तिरमला सर्वसङ्गिनी ।
विचरत्यत्र तेनेयं चारीपद्धतिरीरिता ॥ ६१

इति श्रीराजाधिराजकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते संगीतराजे षोडशसाहस्र्यां संगीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे चारिकोल्लासे देशीचारीलक्षणं नाम तृतीयं परीक्षणं [समाप्तम्] ।

[कलानिधेरुद्धृतं रेचकदेशीचार्यादिविषयकं प्रकरणम्]

*

[रेचकानथ वक्ष्यामश्चतुरो भरतोदितान् ।
पादयोः करयोः कट्या ग्रीवायाश्च भवन्ति ते ॥
पाष्ण्यङ्गुष्ठाग्रयोरन्तर्बहिश्च सततं गतिः ।
नमनोन्नमनोपेता प्रोच्यते पादरेचकः ॥
परितो भ्रमणं तूर्णं हस्तयोर्हंसपक्षयोः ।
यत्पर्यायेण रचितं स भवेत्कररेचकः ॥
विरलप्रसृताङ्गुष्ठाङ्गुलेस्तिर्यग्भ्रमेण च ।
सर्वतो भ्रमणं कट्याः कटीरेचकमूचिरे ॥
ग्रीवाया विधुतभ्रान्तिः कथ्यते कण्ठरेचकः ।
अङ्गहाराङ्गमप्येते जनयन्ति पृथक् फलम् ॥

॥ इति रेचकलक्षणम् ॥]

*

[1]तत्र पादरेचकं लक्षयति । पाष्ण्यङ्गुष्ठयोरित्यादि ।

[2]नमनोन्नमनोपेता अन्तर्गतिर्भवति तदा पार्ष्णेरुन्नमनोपेता बहिर्गतिर्भवतीति द्रष्टव्यम् ॥ १ ॥ कररेचकं लक्षयति । परितो भ्रमणमित्यादि हंसपक्षयोर्हस्तयोः पर्यायेण रचितं तूर्णं पुरतो यद्भ्रमणं अन्तर्बहिश्चेत्यर्थे वामदक्षिणहस्तयोरेकस्मिन् हंसपक्षे अन्तर्भ्रमणं कुर्वति तदन्यो वा भ्रमणं करोति एवं पर्यायेण क्रियते चेत् स कर-

1 The text of this part in all the three mss. is as given above. There is a mention in it of कलानिधि, a commentary on सं. र. On comparing the corresponding portions of सं. र. and its commentary कलानिधि with our text, we find that it is practically an abstract from कलानिधि. It may be that the corresponding verses of नृत्यरत्नकोश are missing in our mss. or more probably the verses might have been similar to those of सं. र. (श्लो. ८९२-९६). Hence to give the idea of the substance of the verse-text, we quote in this bracket [ ] the verses on which, Kalānidhi's commentary has been quoted by our author.

2 The matter from नमनोन्नमनोपेता to प्रकृतमनुसरामः (P. 138) is obviously a digression, the matter being taken as noted above from सं. रं. and its commentary कलानिधि of कल्लिनाथ. It is therefore difficult to ascertain where the third परीक्षण of the second उल्लास must have ended. We have followed the mss. and treated the intervening matter as a digression.

रेचको भवेत् ॥ २ ॥ कटिरेचकं लक्षयति । सर्वतो भ्रमणमिति[1] । तच्च भ्रमरीभेदेष्वनुगतं द्रष्टव्यम् ॥ ३ ॥ कण्ठरेचकं लक्षयति ग्रीवाया इति ॥

अथवा ॥ ४ ॥—

कलानिधेर्मध्यात् ॥ भरतानुक्रमे सति कोहलाद्युक्तत्वाद् द्रष्टव्यम् ।

लोके मुड्डप[2]संज्ञकाश्चारीविशेषा अपि देशीचारीष्वेवान्तर्भूता मन्तव्या । यथा—

*

[देशीचार्यः]

अथ पादनिकुट्टाख्यचारीणां लक्षणं ब्रुवे ।
पादकुट्टनचारी तु लोके मुड्डपसंज्ञिका ॥ १
तस्यास्तु बहवो भेदा दिङ्मात्रं चोच्यते मया ।
सव्यापसव्यवलनं पादचारीषु चोच्यते ॥ २
निकुट्टनं तु पादेन ताडनं स्यान्महीतले ।
उद्देशः क्रियतेऽन्वर्थश्चारीणां स्वो[3]चितो मतः ॥ ३
पुरःपश्चात्सरा नाम पश्चात्पुरःसरा तथा ।
त्रिकोणचारी पश्चाच्च तथैकपादकुट्टिता ॥ ४
पादद्वयनिकुट्टाख्या पादस्थिति[4]निकुट्टिता ।
क्रमपादनिकुट्टा च पार्श्वद्वयचरी तथा ॥ ५
चारी डमरुकुट्टाख्या डमरुद्वयकुट्टिता ।
पुरःक्षेपनिकुट्टा च पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता ॥ ६
पार्श्वक्षेपनिकुट्टा च चतुष्कोणाख्यकुट्टिता ।
मध्यस्थापनकुट्टा च तिरश्चीनाख्यकुट्टिता ॥ ७
चारी च पृष्ठलुलि(?ठि)ता पुरस्ताल्लुलि(?ठि)ता तथा ।
अनुलोमविलोमाख्या प्रतिलोमानुलोमिका ॥ ८
समपादनिकुट्टा च चक्रकुट्टनिका ततः ।
मध्यचक्रा ततो मध्यलुठिता चक्र[5](?वक्त्र)कुट्टिता ॥ ९
पञ्चविंशतिसंख्या[श्च] कीर्तिता ह्यर्थयोगतः ।
एवमन्याश्च कर्तव्याश्चार्यश्चान्वर्थलक्षणाः ॥ १०

1 BC भ्रमण कलानिधेर्मध्यात् मिति । A has the same reading but there is a mark of deletion on it like this: "कलानिधेर्मध्यात्" । 2 ABC मधुप° कलानिधि सं. र. पृ. ३१३ । 3 ABC सोचितो cf. स्वोचितो । क. नि. पृ. ३१३. (सं. र.) । 4 पादस्थिति । क. नि. पृ. ३१३ (सं. र.) । 5 cf. वक्त्रकुट्टिता । क. नि. पृ. ३१३ (सं. र.)

पादशिक्षासु कर्तव्याः कर्तव्या याश्च नर्तने[1] ।
निकुट्य च तलेनादौ पुरःपश्चाद्विधीयते ॥ ११
पादश्चाङ्गुलिपृष्ठेन स्वस्थाने चापि कुट्टितः ।
पुरःपश्चात्सरा नाम सान्वर्था परिकीर्तिता ॥ १२
॥ इति पुरःपश्चात्सरा ॥ १ ॥

*

सैव पश्चात् पुरःक्षेपात् प्रोक्ता पश्चात्पुरःसरा ॥ १३
॥ इति पश्चात्पुरःसरा ॥ २ ॥

*

निवेश्य(?वेशि)तो स्व(?त्व)धः पादः स्थापितोऽङ्गुलिपृष्ठतः ।
निकुट्टितः पुरस्ताच्च पार्श्वे पृष्ठे निवेशितः ॥ १४
चरणाङ्गुलिपृष्ठेन तथा स्थाने च कुट्टितः ।
त्रिकोणचारी सोद्दिष्टा चारी चान्वर्थसंज्ञिता ॥ १५
॥ इति त्रिकोणचारी ॥ ३ ॥

*

कुट्टितश्च स्वपार्श्वे च स्थापितोऽङ्गुलिपृष्ठतः ।
पुनर्निकुट्टितः स्थाने सा चैकपादकुट्टिता ॥ १६
॥ इत्येकपादकुट्टिता ॥ ४ ॥

*

एवं पादद्वयकृता सा पादद्वयकुट्टिता ।
॥ इति पादद्वयकुट्टिता ॥ ५ ॥

*

कुट्टितः प्रथमं पादः स्थितश्चाङ्गुलिपृष्ठतः ॥ १७
अन्यस्ततः कुट्टितश्चेत्पादस्थितिनिकुट्टिता ।
॥ इति पादस्थितिनिकुट्टिता ॥ ६ ॥

*

पादद्वयकृता सैव[2] क्रमपादनिकुट्टिता ॥ १८
॥ इति क्रमपादनिकुट्टिता ॥ ७ ॥

*

कुट्टितोऽङ्गुलिपृष्ठे च स्थितः पादोऽपरस्ततः ।
स्वस्तिकस्थापितः पूर्वः स्वपार्श्वे स्थलकुट्टितः ।
एवं पादद्वयेनापि सा पार्श्वद्वयचारिणी ॥ १९
॥ इति पार्श्वद्वयचारी ॥ ८ ॥

*

1 BC नर्तके । 2 A पादध्यं कृता । BC द्ययं कृत्वा ।

कुट्टितश्चरणः पूर्वं लुठितोऽङ्गुलिपृष्ठतः ।
पश्चान्निकुट्टितस्थाने भवेड्डमरुकुट्टिता ॥ २०

॥ इति डमरुकुट्टिता ॥ ९ ॥

*

पादद्वयकृता सा चेड्डमरुद्वयकुट्टिता ॥ २१

॥ इति डमरुद्वयकुट्टिता ॥ १० ॥

*

कुट्टितश्चरणः पूर्वं पुरतोऽङ्गुलिपृष्ठतः ।
स्थापितः कुट्टितः स्थाने पुरःक्षेपनिकुट्टिता ॥ २२

॥ इति पुरःक्षेपनिकुट्टिता ॥ ११ ॥

*

पश्चात् क्षेपाच्च सा प्रोक्ता पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता ॥ २३

॥ इति पश्चात्क्षेपनिकुट्टिता ॥ १२ ॥

*

पार्श्वतश्च पुनःक्षेपात्पार्श्वक्षेपाख्यकुट्टिता ॥ २४

॥ इति पार्श्वक्षेपकुट्टिता ॥ १३ ॥

*

कुट्टितश्चरणः पूर्वं पुरःपश्चान्निवेशितः ।
त्र्यस्रभावात् पुनश्चापि पुरःपश्चात्तदन्यथा ।
कुट्टितश्च ततः स्थाने चतुष्कोणाख्यकुट्टिता ॥ २५

॥ इति चतुष्कोणकुट्टिता[1] ॥ १४ ॥

*

कुट्टितः प्रथमं पादः पुरःपश्चान्निवेशितः ।
मध्ये निवेशितश्चायं पुनस्तत्रैव कुट्टितः ।
मध्यस्थापनकुट्टाख्या चारी चान्वर्थलक्षणा ॥ २६

॥ इति मध्यस्थापनकुट्टा ॥ १५ ॥

*

कुट्टितश्चरणः पूर्वं क्षिप्त[2]श्चापि स्वपार्श्वके ।
निक्षिप्तश्चापि मध्ये च तत्रापि च निकुट्टितः ।
सा तिरश्चीनकुट्टाख्या प्रोक्ता [3]सार्धप्रसारिका ॥ २७

॥ इति तिरश्चीनकुट्टा अर्धप्रसारिका वा ॥ १६ ॥

*

---

1 C चतुरकोणाख्य° । AB चतुष्कोणाख्य° । 2 C drops from श्चापि…इति तिर° । 3 सार्थप्रचारिका । क. नि. पृ. ३१६ (सं. र.)

कुञ्चि(? ट्टि)तश्चरणः पृष्ठे लुठितोऽङ्गुलिपृष्ठतः ।
पुनश्च कुट्टितस्थाने सा पृष्ठलुठिताभिधा ॥ २८

॥ इति पृष्ठलुठिता ॥ १७ ॥

*

पुरस्ताच्च कृता सैव पुरस्ताल्लुठिताभिधा ॥ २९

॥ इति पुरस्ताल्लुठिता ॥ १८ ॥

*

त्रिकोणचारी या चारी त्वनुलोमविलोमगा ।
स्वस्थाने स्थापितपदा ततस्तत्रापि कुट्टिता ।
सानुलोमविलोमाख्या चारीयं परिकीर्तिता ॥ ३

॥ इत्यनुलोमविलोमा ॥ १९ ॥

*

विपरीतप्रचारा सा प्रतिलोमविलोमिका ॥ ३१

॥ इति प्रतिलोमविलोमिका ॥ २० ॥

*

निकुट्टितौ समौ पादौ स्थितौ चाङ्गुलिपृष्ठयोः ।
समपादनिकुट्टा च कीर्तिता त्वर्थलक्षणा ॥ ३२

॥ इति समपादनिकुट्टिता ॥ २१ ॥

*

कुट्टितं चरणं पश्चाद्भ्रामयित्वा च विन्यसेत् ।
कुट्टयेच्च ततः स्थाने चक्रकुट्टनिका मता ॥ ३३

॥ इति चक्रकुट्टनिका ॥ २२ ॥

*

कुट्टयित्वा च विन्यस्य लुठितश्च निकुट्टितः ।
सा मध्यलुठिता चेति कीर्तितान्वर्थनामका ॥ ३४

॥ इति मध्यलुठिता ॥ २३ ॥

*

कुट्टयित्वा च विन्यस्य भ्रामितो लुठितस्ततः ।
कुट्टितः स पुनः स्थाने वक्त्रकुट्टनिकाभिधा ॥ ३५

॥ इति वक्त्रकुट्टनिका[1] ॥ २४ ॥

*

कुट्टयित्वा च विन्यस्य भ्रामयित्वा न्यसेत्ततः ।
निकुट्टयेत्ततः स्थाने मध्यचक्रा प्रकीर्तिता ॥ ३६

॥ इति मध्यचक्रा ॥ २५ ॥

*

---

1 ABC चक्रकुट्टनिका. cf वक्त्रकुट्टनिका । क. नि. पृ. ३१७ (सं. र.).

एवं प्रकीर्तिताश्चार्यः पञ्चविंशतिः संख्यया ।
एवमन्याश्च विज्ञेयाश्चार्योऽप्यूह्या मनीषिभिः ॥ ३७

इति प्रसङ्गान्मुडुपसंज्ञकाश्चार्यो दर्शिताः । प्रकृतमनुसरामः[1] ॥

*

द्वितीयोल्लासे चतुर्थं परीक्षणम् ।

यन्मण्डलं भूर्भुवः स्वः प्रकाशाय प्रवर्तते ।
वरेण्यं सवितुस्तन्मे व्याधिनाशाय कल्पताम् ॥ १

*

[मण्डललक्षणम् ।]

लक्ष्मप्रकरणे पूर्वं मण्डलं लक्षितं मया ।
तद्भेदानधुना वच्मि भ्रमरास्कन्दिते ततः ॥ २
आवर्तं [2]शकटास्याख्यं तथा चैवाड्डितं परम् ।
समोत्सरितमध्यर्धमेलकाक्रीडितं ततः ॥ ३
पृष्ठकुट्टं चाषगतं भौमानीति दश क्रमात् ।
अतिक्रान्तं दण्डपादं क्रान्तं ललितसञ्चरम् ॥ ४
सूचीविद्धं वामविद्धं विचित्रं विहृतं ततः ।
अलातं ललितं चेति दशाकाशभवानि च ॥ ५
भौमाकाशिकचारीणां कार्यत्वान्मण्डलान्यपि ।
कारणानुगुणत्वेन भौमान्याकाशिकान्यपि ॥ ६
प्रायेणैषां नियोगस्तु विज्ञेयः शस्त्रमोक्षणे ।
युद्धे चाकाशिकानां तु प्राधान्यं मुनयोऽवदन् ॥ ७

*

[भौममण्डलानि ।]

चारीविवक्षया ज्ञेयश्चरणोऽत्र विजानतः ।
न न्यूनाधिकता दुष्या मण्डले चारिकागता ॥ ८
दक्षिणे जनितां कुर्याद् वामेऽथ स्पन्दितां तथा ।
दक्षिणे शकटास्यां च वामेऽपस्पन्दितां तथा ॥ ९
दक्षिणे भ्रमरीं वामे स्पन्दितामितरे पुनः ।
शकटास्यां चाषगतिं वामे भ्रमरिकां तथा ।
दक्षिणे स्पन्दितां वामे विदध्याद्भ्रमरे बुधः ॥ १०

॥ इति भ्रमरम् ॥ १ ॥

*

---

1 See appendix I for the text of Kalānidhi. 2 ABC °सकटा° ।

दक्षिणो भ्रमरो वामोऽड्डितोऽथ भ्रमरः स चेत् ।
शकटास्यो भवन्दक्ष ऊरूद्वृत्तो भवेत्ततः ॥ ११
अध्यर्धिको भवन्वामो भ्रमरः स्यात्तथेतरः ।
स्पन्दितः शकटास्यस्तु वामः सोऽप्येव भूतलम् ।
स्फुटमास्फोटयेद्यत्र तदास्कन्दितमुच्यते ॥ १२

॥ इत्यास्कन्दितम् ॥ २ ॥

*

दक्षिणो जनितो वामः स्थितावर्तस्ततः परम् ।
शकटास्यत्वमप्यैवमेलकाक्रीडितां श्रयेत् ॥ १३
ऊरूद्वृत्ताड्डिते चार्यौ जनितामाश्रयेत्ततः ।
समोत्सरितमत्तल्लिः क्रमादङ्घ्रिस्तु दक्षिणः ॥ १४
शकटास्यां भजन् चारीमूरूद्वृत्तस्तथेतरः ।
अङ्घ्रिश्चाषगतिर्द्विः स्याद्दक्षिणस्पन्दितस्ततः ॥ १५
शकटास्यो भवेद्वामो दक्षिणो भ्रमरो भवेत् ।
वामश्चाषगतिर्यत्र तदावर्तं स्मृतं बुधैः ॥ १६

॥ इत्यावर्तम् ॥ ३ ॥

*

दक्षिणो जनितो भूत्वा [1]स्थितावर्तो भवेत्ततः ।
समोत्सरितमत्तल्लिः शकटास्यस्ततः परम् ॥ १७
वामस्तु स्पन्दितो भूत्वा यावन्मण्डलपूरणम् ।
शकटास्यो भवेद्यत्र शकटास्याभिधं तु तत् ॥ १८

॥ इति शकटास्यम् ॥ ४ ॥

*

उद्घाटितस्ततो बद्धः समोत्सरितपूर्वकः ।
[2]मत्तल्लिरर्धमत्तल्लिरपक्रान्ताभिधस्ततः ॥ १९
उद्वृत्तो विद्युद्भ्रान्तश्च भ्रमरः स्पन्दितस्तथा ।
दक्षिणो वामपादस्तु शकटास्यः परः पुनः ॥ २०
द्विः स्याच्चाषगतिर्वामोऽड्डितोऽध्यर्धिकतां गतः ।
तथा चाषगतिर्दक्षः समोत्सरितमत्तल्लिः ॥ २१
मत्तल्लिर्भ्रमरश्चैव वामोऽथो दक्षिणः पुनः ।
स्पन्दितां चारिकां कृत्वा भूतटास्फोटनं यदा ।
कुरुते प्राहुराचार्यास्तदा मण्डलमड्डितम् ॥ २२

[॥ इत्यड्डितम् ॥ ५ ॥]

*

---

1 BC omit from स्थितावर्तौ° to भूत्वा । 2 ABC मतल्लिरथ° cf मत्तलिरर्ध-मत्तलिर° सं. र. अ. ७. श्लो. ११६०.

समपादं समास्थाय स्थानं हस्तौ निरन्तरौ।
ऊर्ध्वीकृतौ प्रसार्यैवा[1]प्यावेष्ट्योद्वेष्ट्य च क्षिपेत् ॥ २३
कटीतटे ततः पादौ क्रमाद्दक्षिणवामकौ।
भ्रामयेच्च ततो वामं पुरः पादं प्रसारयेत् ॥ २४
क्रमादेवं नटो भ्रान्त्वा मण्डलभ्रमणं भजेत्।
चतुर्दिक्कं तदा प्रोक्तं समोत्सरितसंज्ञकम् ॥ २५

॥ इति समोत्सरितम् ॥ ६ ॥

*

जनितः स्पन्दितश्चैकदक्षिणश्चरणो भवेत्।
वामोऽथाध्यर्धिको भूत्वा क्रमाच्चाषगतिर्भवेत् ॥ २६
मत्तल्लिर्भ्रमरश्चैव दक्षिणः शकटास्यताम्।
प्राप्य चान्ते चतुर्दिक्कं मण्डलभ्रमणं यदा।
तदा नियुद्धविषयमध्यर्धं मण्डलं भवेत् ॥ २७

॥ इत्यध्यर्धम् ॥ ७ ॥

*

पदैर्भूमियुतैः सूचीविद्धाख्यं करणं श्रितैः।
सूचीचारीयुतैर्विद्धा प्रयोगैरेलकादिकैः ॥ २८
क्रीडितैः पूर्णभ्रमरै[श्च]सूचीविद्धाभिस्तथा।
पूर्ववत् संप्रयुक्तैश्च तथाक्षिप्तैः पदक्रमैः ॥ २९
दिक्चतुष्टयसंयुक्तमण्डलभ्रान्तिसंयुतैः।
कटिरेचितकैश्चैवमेलकाक्रीडिताह्वयम् ॥ ३०

॥ इत्येलकाक्रीडितम्[2] ॥ ८ ॥

*

सूचीदक्षिणपादः स्यात् वामोऽपक्रान्तया युतः।
बहुशो दक्षवामौ च भुजङ्गत्रासिताभिधौ।
अन्ते च मण्डलभ्रान्तिः पृष्ठकुट्टं तदा भवेत् ॥ ३१

॥ इति पृष्ठकुट्टम् ॥ ९ ॥

*

बहुशश्चाषगतिभिश्चरणैः सकलैर्यदा।
मण्डलभ्रमणं कुर्यादन्ते चाषगतं तदा।
नियुद्धविषयं ह्येतत् प्रयुक्तं भरतादिभिः ॥ ३२

॥ इति चाषगतम् ॥ १० ॥

॥ इति दशभौममण्डलानि ॥

*

1 BC °वायावे°। 2 C इत्येलकाक्रीक्रीडितम्।

[आकाशिकमण्डलानि ।]

दक्षिणो जनितां कुर्यात् शकटास्यां क्रमाद्यदा ।
वामोऽलातो दक्षिणस्तु पार्श्वक्रान्तस्तु वामकः ॥ ३३
सूची च भ्रमरश्चैव दक्ष उद्वृत्ततां व्रजेत् ।
वामस्त्वालातिकोऽथाङ्घ्री छिन्नं करणमाश्रितौ ॥ ३४
बाह्यभ्रमरकं यत्र वामसङ्घं च रेचितम् ।
अतिक्रान्तायुतो वामो दण्डपादायुतः परः ।
अतिक्रान्तं तदा ज्ञेयं मण्डलं शङ्करप्रियम् ॥ ३५

॥ इत्यतिक्रान्तम् ॥ १ ॥

*

दक्षिणे जनितां कृत्वा दण्डपादां भजेदथ ।
सूचीं च भ्रमरीं वामे उद्वृत्तां दक्षिणे पुनः ॥ ३६
वामेऽलातां तदा दक्षे पार्श्वक्रान्तां [1]परे पुनः ।
भुजङ्गत्रासितां कुर्याद्वामोऽतिक्रान्ततां भजेत् ॥ ३७
दक्षिणो दण्डपादोऽथ सूचीं च भ्रमरीं परे ।
यत्र तद्दण्डपादाख्यं मण्डलं भणितं बुधैः ॥ ३८

॥ इति दण्डपादम् ॥ २ ॥

*

सूचीदक्षस्तथा वामोऽपक्रान्तो दक्षिणः पुनः ।
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामः समंतान्मण्डलभ्रमम् ॥ ३९
कृत्वा सूचीभवन् दक्षोऽपक्रान्तो यत्र मण्डले ।
तदुक्तं कविभिः क्रान्तं स्वाभाविकगतौ स्मृतम् ॥ ४०

॥ इति क्रान्तम् ॥ ३ ॥

*

सोऽर्धजानुः स सूचीको दक्षिणश्चरणस्ततः ।
अपक्रान्तीभवेद्वामः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ॥ ४१
पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तो दक्षिणः पुनः ।
सूचीवामस्त्वपक्रान्तः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ॥ ४२
अतिक्रान्तस्ततो वामश्चरणद्वितयं ततः ।
छिन्नं [2]करणमाश्रित्य बाह्यभ्रमरकं ततः ।
वामश्चेल्ललितं कुर्यात्तदा ललितसञ्चरम् ॥ ४३

॥ इति ललितसञ्चरम् ॥ ४ ॥

*

---

1 BC पुरे पुनः । 2 BC करमाश्रित्य ।

क्रमात् सूची च भ्रमरः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।
अतिक्रान्तो भवेद्वामो दक्षः सूचीं समाश्रयेत् ॥ ४४
अपक्रान्तस्ततो वामः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः ।
सूचीविद्धं तदाख्यातं मण्डलं मण्डलेश्वरैः ॥ ४५
॥ इति सूचीविद्धम् ॥ ५ ॥

*

सूचीदक्षस्तथा वामोऽपक्रान्तो दक्षिणः पुनः ।
दण्डपादोऽथ वामस्तु सूचीं च भ्रमरीं श्रयेत् ॥ ४६
पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्यादाक्षिप्तो दक्षिणे ततः ।
दण्डपादस्ततश्चोरूद्वृत्तः स्याद्दक्षिणः क्रमात् ॥ ४७
वामः सूची च भ्रमरोऽलातश्च क्रमतो भवेत् ।
पार्श्वक्रान्तां [1]भजेद्दक्षो वामोऽतिक्रान्ततां व्रजेत् ।
वामविद्धं तदाख्यातं मण्डलं मण्डलार्थिभिः ॥ ४८
॥ इति वामविद्धम् ॥ ६ ॥

*

चारीं च जनितां कृत्वोरूद्वृत्तैश्चैव विच्यवः ।
स्थितावर्तः शकटास्य एलकाक्रीडितस्ततः ॥ ४९
ऊरूद्वृत्तोऽड्डितश्चैव जनितस्तदनन्तरम् ।
समोत्सरितमत्तल्लिः क्रमादङ्घ्रिस्तु दक्षिणः ॥ ५०
वामस्तु स्पन्दितां कुर्यात् पार्श्वक्रान्तां तु दक्षिणः ।
भुजङ्गत्रासितां वामो दक्षोऽतिक्रान्ततां व्रजेत् ॥ ५१
उद्वृत्तत्वं चैष [2]वामोऽलातः स्याद्दक्षिणः पुनः ।
पार्श्वक्रान्तः पुनः सूची वामो दक्षं च विक्षिपेत् ।
अपक्रान्तां [3]भजेद्वामस्तद्विचित्रमुदाहृतम् ॥ ५२
[॥ इति विचित्रम् ॥ ७ ॥]

*

[4]विच्यवोत्खण्डिते कुर्वन् पार्श्वक्रान्तोऽत्र दक्षिणः ।
स्पन्दितो वामपादः स्यादुद्वृत्तो दक्षिणो भवेत् ॥ ५३
वामोऽलातो दक्षिणस्तु चारीं सूचीमुपाश्रयेत् ।
पार्श्वक्रान्तस्तु वामोऽङ्घ्रिराक्षिप्तीभूय दक्षिणः ॥ ५४
सव्यापसव्यं भ्रमणात् दण्डपादां भजेत्ततः ।
[वामः क्रमेण सूची स्याद् भ्रमरश्चाथ दक्षिणः ।

---

1 C भवेद्दक्षो । 2 C मालोलातः । 3 C भवेद्वाम । 4 BC drop the whole verse.

भुजङ्गत्रासितो वामोऽतिक्रान्तो विहृताभिधे ॥ ५५

॥ इति विहृतम् ॥ ८ ॥

*

सूचीं च भ्रमरीं वामे क्रमात्पादे तु दक्षिणे[1] ।]
भुजङ्गत्रासितः पश्चादलातो दक्षिणेतरः ॥ ५६
आवृत्तिभिः सप्तभिर्वा षड्भिर्वा क्रमतस्त्विमाः ।
चारीः कृत्वा चतुर्दिक्षु भ्रान्त्वा मण्डलवद्द्रुतम् ॥ ५७
अपक्रान्ता दक्षिणे तु वामे तु चरणे पुनः ।
अतिक्रान्ता भ्रमरिके ललितैश्चरणक्रमैः ।
कुर्यादलातं तं प्राहुर्मण्डलं चित्रमण्डलम् ॥ ५८

॥ इत्यलातम् ॥ ९ ॥

*

दक्षिणश्चरणः सूचीं वामोऽपक्रान्ततां भजेत् ।
पार्श्वक्रान्तीभवन् दक्षो भुजङ्गत्रासितो भवेत् ॥ ५९
अतिक्रान्तां चरेद्वाम आक्षिप्तो दक्षिणो भवेत् ।
वामक्रमादतिक्रान्तोरूद्वृत्तालातकीभवेत् ॥ ६०
पार्श्वक्रान्तो दक्षिणस्तु सूचीवामोऽथ[2] दक्षिणः ।
अपक्रान्तो वामपादस्त्व [तिक्रान्तो] भवेद्यदा ।
तदुक्तं ललितं यत्र संचरेल्ललितं नटः ॥ ६१

॥ इति ललितम् ॥ १० ॥

*

॥ इति दशाकाशिकमण्डलानि ॥

॥ इति मण्डललक्षणम् ॥

*

विचित्रैर्विहृतैर्येनातिक्रान्तं वैरिमण्डलम्
उल्लासितं जगद्येन पादैर्ललितसञ्चरैः ।
एकलिङ्गप्रसादेन मण्डले यस्य नित्यशः
नेतयस्तेन राज्ञेदं कृतं मण्डललक्षणम् ॥ ६२

इति श्रीसरस्वतीरससमुद्भूतकैरवोद्याननायकेन अभिनवभरताचार्येण मालवाम्भोधिमाथमन्थमहीधरेण योगिनीप्रसादासादितयोगिनीपुरेण मण्डलदुर्गोद्धरणोद्धृतसकलमण्डलाधीश्वरेण अजयमेरुजयाजेयविभवेन यवनकुलाकालकालरात्रिरूपेण शाकंभरीरमणपरिशीलनपरिप्राप्तशाकंभरीतोषितशाकंभरीप्रमुखशक्तित्रयेण नागपुरोद्धूतप्रचण्डपवनेन

---

1 Verses between this bracket[ ] are verses no-1198-99 (a) taken from S. R. Ad. 7. as they are missing in our mss. 2 BC वामोप्यदक्षिणः ।

श्रीमत्कुंभ[ल]मेरुनवीननिर्मितसुमेरुणा श्रीचित्रकूटभौमस्वर्गतातत्त्वीकरणरचितचारुतरपथेन मेदपाटसमुद्रसंभवरोहिणीरमणेन अरिराजमत्तमातङ्गपञ्चाननेन प्ररूढपत्रयवनद्रवदहनदवानलेन प्रत्यर्थिपृथिवीपतितिमिरततिनिराकरणप्रौढप्रतापमार्तण्डेन वैरिवनितावैधव्यदीक्षादानदक्षोद्दण्डकोदण्डदण्डमण्डिताखण्डभुजादण्डेन भूमण्डलाखण्डलेन श्रीचित्रकूटविभुना अध्युष्टतमनरेश्वरेण गजनरतुरगाधीशराजत्रितयतोडरमल्लेन वेदमार्गस्थापनचतुराननेन याचककल्पनाकल्पद्रुमेण वसुंधरोद्धरणादिवराहेण परमभागवतेन जगदीश्वरीचरणकिङ्करेण भवानीपतिप्रसादाप्तापसादेन राजगुर्वादिबिरुदावलीविराजमानेन राजाधिराजमहाराणाश्रीमोकलेन्द्रनन्दनेन राजाधिराजश्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते संगीतराजे षोडशसाहस्र्यां संगीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे चारिकोल्लासे मण्डललक्षणं नाम चतुर्थं परीक्षणम् ॥ उल्लासश्च समाप्तिं समगादिति विततमतीनामभिमतसिद्धिरस्तु[1] ॥

———o———

॥ इति नृत्यरत्नकोशे चारिकोल्लासे चतुर्थं परीक्षणं समाप्तम् ॥

॥ समाप्तश्चायं द्वितीय उल्लासः ॥

विचित्रैर्विहृते(? तै)र्येनातिक्रान्तं वैरिमण्डलं। उल्लासितं जगद्येन पादैर्ललितसञ्चरैः।
कामेश्वरीप्रसादेन मण्डले यस्य नित्यशः नेतयस्तेन राज्ञेदं कृतं मण्डललक्षणम् ॥

इति श्रीजगदीशवनदेवनिजगणेन ॥१॥ जगदीश्वरी-कामेश्वरीचरणकिङ्करेण ॥२॥ श्रीब्रह्माद्रिविभुना ॥ ३ ॥ अध्युष्टतमनरेश्वरेण ॥ ४ ॥ भीष्मपुरजयानीतानेकराजकन्यारत्नेन ॥५॥ श्रीपुरग्रहणसंवर्द्धितयशोभरेण ॥६॥ वाटिकाचलग्रहणजनितकीर्त्तिपूरपराजिताचलनायकेन ॥७॥ संगमनीरदुर्गोद्धरणोद्धृतसकलमण्डलाधीश्वरेण ॥८॥ मदनपुरविध्वंसनबंदीकृतयवनीनिचयेन ॥९॥ महिषमेरुजयाजेयविभवेन ॥१०॥ शाकम्भरीरमणपरिशीलनपरिप्राप्तशाकम्भरीपरितोषितशाकम्भरीप्रमुखशक्तित्रयेण ॥११॥ अष्टादशगिरिशिखरपरिवारितांजनाद्रिविजयविख्यातवीर्यगर्वेण ॥ १२ ॥ महदंबमातृकापूरोद्धूलनधर्षितमहोरगपुरेण ॥१३॥ श्रीवनदेवस्वामिप्र[ा]सादरचनापरपरमेश्वरेण ॥१४॥ त्र्यम्बकेश्वरसन्निधिकीर्तिस्तंभोन्नतजयस्तंभेन ॥१५॥ श्रीब्रह्मगिरिभौमस्वर्गतायथार्थीकरणरचितचारुपथेन ॥१६॥ श्रीकामाक्षागिरिनवीननिर्मितिपराजितसुमेरुणा ॥१७॥ श्रीमहिषाचलोपरि श्रीहरिशरणरचिताचलदुर्गेण ॥१८॥ अभिनवभरताचार्येण ॥१९॥ वीणावादनप्रवीणेन ॥२०॥ यवनकुलाकालकालरात्रिरूपेण ॥२१॥ त्रिसंध्यक्षेत्रसमुद्रसंभवरोहिणीरमणेन ॥२२॥ परमभागवतेन ॥ २३ ॥ महाराजाधिराजमहाराणाश्रीमृगाङ्कनामराजेन्द्रनन्दनेन ॥२४॥ महाराज्ञीश्रीसौभाग्यवतीजसमाम्बिकाहृदयनंदनेन ॥ २५ ॥ सकलसीमंतिनीशिरोमणिनिकुंभराजन्यवंशावतंसमहाराज्ञीश्रीकर्मवती-लघुमादेवी-हृदयाधिनाथेन ॥ २६ ॥ राजाधिराजकालसेनमहीमहेन्द्रेण विरचिते सङ्गीतराजे षोडशसाहस्र्यां सङ्गीतमीमांसायां नृत्यरत्नकोशे चारिकोल्लासे मण्डललक्षणं नाम चतुर्थं परीक्षणं समाप्तम् ॥ उल्लासश्च द्वितीयः॥

———o———

राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर
की
कार्य प्रवृत्ति

***

१. राजस्थानमें और राजस्थानसे संलग्न प्रदेशोंमें प्राचीन साहित्यकी, अर्थात् संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और राजस्थानी आदि भाषाओंमें ग्रथित वाङ्मयकी शोध करना और उसको प्रकाशमें लाना।

*

२. राजस्थानकी प्राचीन संस्कृतिकी आधारभूत स्थापत्य, चित्र, शिल्प, शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के, दस्तावेज आदि साधन-सामग्रीका संग्रह, संरक्षण, संकलन एवं पर्यवेक्षण आदि करना।

*

३. प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह करना, उनकी प्रतिलिपियां करवाना, फोटो, माइक्रोफिलम आदि बनवाना।

*

४. राजस्थानकी प्राचीन संस्कृतिके अध्ययन, अन्वेषण, संशोधन आदि कार्यमें अत्यावश्यक उत्तम प्रकारका पुस्तक-भण्डार (ग्रन्थालय) स्थापित करना और उसमें देश-विदेशमें मुद्रित अलभ्य-दुर्लभ्य ग्रन्थोंका संग्रह करना।

*

५. राजस्थानके लोकजीवन पर प्रकाश डालने वाले विविध विषयक लोकगीत, सांप्रदायिक भजन-पदादि स्वरूप भक्ति-साहित्य एवं सामाजिक संस्कार, धार्मिक व्यवहार और लौकिक आचार-विचार आदि से संबन्धित सर्व प्रकारकी सामग्रीकी खोज करना और उस पर प्रकाश डालना।

*

प्रकाशक – देवराज उपाध्याय, उपसंचालक–राजस्थानपुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर (राजस्थान)

मुद्रक – लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी, निर्णयसागर प्रेस, २६।२८, कोलभाट स्ट्रीट, बम्बई नं. २